हिन्दी की लम्बी कविताओं का प्रथम दस्तावेज

कहीं भी खत्म कविता नहीं होती

संपादक डॉ० नरेन्द्र मोहन



संभावना प्रकाशन, हापुड़

कही भी खत्म कविता नही होती (कविता) / प्रथम संस्करण 1978/आवरण संतोष जड़िया/प्रकाशक संभावना प्रकाशन, हापुड़ 245101/मुद्रक प्रगति प्रिन्टर्स नवीन शाहदरा दिल्ली 32 मूल्य पैंतीस रुपये

KAHIN BHI KHATM KAVITA NAHIN HOTI (Poetry) Edited by Dr Narendra Mohan, First Edition 1978 Rs 35 00

उन सभी कवियो को जिन्होने
लम्बी कविता को
सभव बनाया

कही भी खत्म कविता नही होती

कही भी खत्म कविता नही होती

मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'चकमक की चिनगारिया' के अंतिम भाग की दो पंक्तिया हैं

> नहीं होती कहीं भी खत्म कविता नही होती
> कि वह आवेग त्वरित काल यात्री है

कविता की समापन रूढि से मुक्त होने का यह वक्तव्य कोरा शाब्दिक प्रस्ताव नही है, यह वक्तव्य मुक्तिबोध की कविता दृष्टि म से छनकर आया है। कविता को 'आवेग त्वरित काल यात्री' मानने वाला कवि कविता का बाकायदा समाप्त करने की रस्म निभा ही नही सकता, खास तौर स तब तो बिल्कुल ही नही जब ऐसा करने के साथ कलावादी और बिम्बवादी आशय चिपके हुए हो। मुक्तिबोध जानते थे कि कलात्मक अन्विति की दुहाई देकर या बिंब का प्रतिमान मानकर कविता म से उभर रही भाव या विचार चेतना को अवरुद्ध करने के प्रयत्न किये जाते रहे हैं। अन्विति सबधी ऐसे तकाजा और प्रतिमाना को मुक्तिबोध अपनी कविता के लिए, खास तौर से, लम्बी कविताओ के रचना विधान के लिए एक गैर जरूरी और अनुचित हस्तक्षेप मानते थे क्योंकि उन्हे लगता था कि इस तरह की धारणाए यथार्थ को सीमित करती हैं और इसके विविध रूपो और गतिशील तत्वो की पहचान म बाधक बनती है। यथार्थ के विविध और गतिशील रूपो, तत्वो द्वारा परिचालित होने वाले और लम्बी कविता को एक अनिवार्य काव्य माध्यम के रूप म अपनाने वाले मुक्तिबोध जसे कवि से कलावादी, बिंबवादी आशयो की पूर्ति के निमित्त कविता को परपरित अर्थ म समाप्त करने की धारणा के विरुद्ध वक्तव्य देना स्वाभाविक ही था। यह वक्तव्य, इसीलिए, मुक्तिबोध द्वारा केवल अपनी कविताओ के पक्ष म दिया गया सरल तर्क भर नही है, हिन्दी की लम्बी कविताओ के सदभ म

भी इस वक्तव्य की अहमियत है। इसमें यथार्थ को पकड़ने और अभिव्यक्त करने की तथा एक नये रूप विधान में कविता रचने की छटपटाहट की ओर स्पष्ट संकेत है। इसमें कविता के प्रति उनकी वह रचना-दृष्टि भी सामने आ गयी है जो उनकी रचनाधर्मिता और मूल्यांकन पद्धति का आधार है। ध्यान देने की बात है कि वे भावुक कवियों की तरह कविता को केवल 'आवेग त्वरित' कहकर छुटकारा नहीं पा लेते। वे उसे 'आवेग त्वरित काल यात्री' कहते हैं और उसे काल के आयाम में, ऐतिहासिक परिस्थिति के संदर्भ में ग्रहण करने और फैलाने पर बल देते हैं।

इस वक्तव्य का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इसके माध्यम से लम्बी कविता के कुछ खास पहलू उजागर हो सके हैं, यद्यपि सभी प्रकार की लम्बी कविताओं में इन्हें खोजना भ्रामक और अनुचित ही होगा। लम्बी कविताएं रचते हुए मुक्तिबोध को एक भिन्न किस्म का अनुभव हुआ था—छोटी कविता, प्रगीत और प्रबंधात्मक विधान में काव्य रचना करने से निष्पन्न अनुभव से अलग और विशिष्ट—जिस पर न छोटी कविता और प्रगीत के नियम लागू हो सकते थे, न प्रबंधात्मक विधान के। शुरू शुरू में इससे मुक्तिबोध को परेशानी और दुविधा जरूर हुई[1] और उन्हें उपेक्षा भी सहनी पड़ी क्योंकि उनकी कविताएं प्रचलित मान्यताओं और प्रतिमानों के अनुकूल नहीं थीं। पर चूंकि लम्बी कविता का विधान उनकी रचनाधर्मिता और यथार्थ बोध के दबावों में से सहज रूप से फूटा था, इसलिए बावजूद कठिनाइयों और परेशानियों के वे उसे गंभीर सर्जनात्मक निष्ठा के रूप में अपनाए रहे और कविता और आलोचना की बनी बनाई सरणियों और परिपाटियों को चुनौती देते रहे। इसी सिलसिले में उन्होंने अपनी लम्बी कविताओं द्वारा कविता की समापन रूढ़ि से मुक्त होने का प्रमाण दिया तथा अन्विति संबंधी घिसी पिटी प्रगीताश्रित मान्यताओं को अमान्य ठहराया।

हमारे यहां कविता की आलोचना के प्रतिमान मुख्य रूप से छोटी कविताओं, प्रगीतों या प्रबंधात्मक काव्यों के आधार पर ग्रहण किए जाते रहे हैं। ये प्रतिमान लम्बी कविताओं या लम्बे आकार में फैली हुई रचनाओं के विश्लेषण मूल्यांकन करने में सहायक सिद्ध होने के बजाय, अधिकतर बाधक ही बने हैं। लम्बी कविताओं में संवेदनात्मक तथा चेतनागत तनावों को ब्यौरों की सहायता से जिस रूप में संतुलित किया जाता है, उसकी कल्पना भी छोटी कविताओं या प्रगीतों के रचना

1 कल ही मैंने एक लम्बी कविता खत्म की। उस का अंत मुझे शिथिल सा जान पड़ा। उस के अन्त पर जितना अधिक सोचता गया मुझे लगा कि उस कविता को और बढ़ाना होगा कि वह अपने आप बढ़ जायगी। मुझे उसकी सम्भावित लम्बाई चौड़ाई देख भय सा जान पड़ा भय इसलिए कि इतनी प्रदीर्घता हमारे यहां अच्छी नहीं समझी जाती। मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी पृ०26

विधान म नही की जा सकती। यथार्थ की गतिशील और गुम्फित प्रकृति का लम्बी कविताओ म ही अभिव्यक्त किया जा सकता है छोटी कविताओ म नही। लम्बी कविताओ को, इसीलिए, छोटी कविताओ के प्रतिमान के आधार पर अथवा प्रगीतात्मक या प्रबन्धात्मक अभिरुचि से निर्मित आलोचना पद्धति द्वारा परखा नही जा सकता। छोटी कविताओ, प्रगीतो और प्रबन्धात्मक विधानो पर निर्भर और उनसे बनी आलोचनात्मक आदतो द्वारा लम्बी कविताओ को समझने म हमेशा कठिनाई रहेगी।

किसी साहित्यिक रचना के रूप विधान के बनने टूटने और अप्रासंगिक हो जाने का जसे एक इतिहास है उसी तरह साहित्य के क्षेत्र म किसी नये रूप विधान के उदय, प्रारंभ और चरम बिन्दु तक पहुचने का, उसके उभर कर सामने आने का भी एक इतिहास है। इसे नजरअन्दाज करने से किसी भी समय के साहित्य को या उसके रचना विधान को समझा नही जा सकता। रूप विधान मे परिवर्तन की जड उस समय के समाज म या युग विशेष मे विद्यमान रहती हैं। इस संदर्भ म ही कवियो द्वारा, समय-समय पर, अभिव्यक्ति के संकट को महसूस किया जाता रहा है। हम यह ध्यान म रखना चाहिए कि इतिहास के किस बिन्दु पर कौन सा रूप-विधान कवियो द्वारा अंशत या पूर्णत अस्वीकृत कर दिया गया? यह भी संभव है कि किसी युग विशेष म दो से अधिक रूप विधान समान रूप से कवियो तथा पाठको द्वारा ग्रहण किये जाते रहे हो या कवियो द्वारा एक की अपेक्षा दूसरे को तरजीह दिए जाने की प्रवृत्ति रही हो। कई बार एक ही समय के साहित्य म अनेक रूप विधानो की सह स्थिति भी दिखती है। नयी परिस्थितियो म कवि का सृजनात्मक बोध नये नये रूपाकारो को ग्रहण करने के प्रति आकर्षित होता है पर परम्परागत रूपाकारो की अभिव्यक्ति क्षमता म विश्वास और उनमे लिखने की अभ्यासी मनोवृत्ति उस पर अंकुश भी लगाये रखती है। छायावादी युग की हिन्दी कविता म नये रूप विधान के प्रति आकर्षण तथा पुराने रूप विधान द्वारा पैदा हुए प्रतिबंधो को एक साथ देखा जा सकता है। छायावाद युग म प्रबन्धात्मक विधान का चरम निदर्शन 'प्रसाद' की कामायनी'(1936)म जरूर मिला पर इसी युग म सुमित्रानन्दन पंत की 'परिवर्तन (1923), जयशंकर प्रसाद की 'प्रलय की छाया' (193?) और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' (1937) जसी लम्बी कविताए भी लिखी गयी जिनसे कविता का प्रबन्धात्मक और प्रगीतात्मक ढाचा बुरी तरह हिल गया। लम्बी कविताओ का यह प्रारंभिक दौर प्रबन्धात्मक और प्रगीतात्मक ढाँचे की जकडबंदी से मुक्त होने का पहला कार्यात्मक अभियान था। यह अभियान आगे चलकर वास्तविक सामाजिक स्थितियो को जसे-जसे आत्मसात करता गया, इसका रूप निखरता गया और प्रबन्धात्मक रूपविधान अप्रासंगिक बनता गया।

यह एक तथ्य है कि आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता ने परपरागत वनागिरल काव्यरूपों की उपयोगिता और सार्थकता के सामने प्रश्न चिह्न लगाया है। ये काव्य रूप अभिव्यक्ति में सहायक बनने के बजाय बाधक ही बने हैं और इनके रूढ़ साचो से जुड़ी हुई अपेक्षाओं के कारण आधुनिक अनुभव की अभिव्यक्ति अवरुद्ध हुई या कम अभिव्यक्त हुई है। कोई अभिव्यक्ति प्रकार जब इस तरह से काव्यानुभव को अपने साचो में अपनी शर्तों पर जकड़ने तो उसकी रचनात्मक उपयोगिता संदिग्धास्पद हो जाती है। प्रबंधात्मक रूप विधान के साथ यही हुआ है। इसके रचनात्मक दृष्टि से अनुपयोगी और अप्रासगिक हो जाने का एक खास कारण यह रहा है कि यह काव्य रूप एक रूढ़ पद्धति के अनुरूप प्रतिक्रियाए जगाता रहा जिससे आधुनिक अनुभव और वास्तविकता तथा उससे निष्पन्न चेतना के साथ इसका विशेष तालमेल न बैठ सका। आधुनिक जीवन की उलझी हुई परिस्थितियों और जटिल सवेदनाओं के सदर्भ में परपरागत काव्य माध्यम अपर्याप्त सिद्ध हुआ। उस पुराने रूप विधान में अभिव्यक्त करना सभव न रहा। यह एक दिलचस्प उदाहरण है कि वास्तविकता के अनुरूप अपने साचो में रद्दोबदल न कर सकने के कारण तथा अपने रूपात्मक कलेवर में बधी हो जाने से कोई काव्य रूप कैसे अपनी प्रासगिकता खोकर बाझ हो जाता है। अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के दौरान ही एक काव्य माध्यम की तलाश शुरू हुई जिसमें नए जीवन विधान की सगति हो और जो परम्परागत रूप विधान की रूढ़ियो से मुक्त भी हो, जिसमें नए सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो और जो आधुनिक परिस्थिति और सवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित भी हो। इस तलाश के सिलसिले में ही लबी कविता का नाटकीय विधान उभर कर सामने आया। कवि कर्म की नई धारणा के परिणामस्वरूप तथा परिस्थिति और कवि मन के एक साथ क्रियात्मक हो उठने और क्रिया प्रतिक्रिया से नियोजित हो जाने से लबी कविता के रूपात्मक अन्वेषण तथा रचनात्मक प्रतिफलन में मदद मिली। आधुनिक स्थितियो को देखते हुए लबी कविता इस अर्थ में एक काव्यगत अनिवार्यता सिद्ध हुई।

लम्बी कविता की रचना प्रक्रिया का एक विधायक अन्तर्वर्ती पहलू सृजनात्मक तनाव है। सृजनात्मक तनाव की प्राथमिक स्फूर्ति या उसका मात्र एक क्षण लम्बी कविता नहीं लिखवा सकता, भले ही उससे एक सुदर बिम्ब या एक अच्छी छोटी कविता की सृष्टि हो जाए। लम्बी कविता की रचना तभी संभव है जब सृजनात्मक तनाव दीर्घकालिक हो तथा विस्तृत फलक पर अपनी क्रियात्मकता सिद्ध कर रहा हो। पर एडगर ऐलन पो को लगता है कि लम्बी कविता में इसे साध पाना सभव नहीं है। वे यह मानते हैं कि लम्बी कविता महज एक विरोधाभास है क्योंकि तनाव की जिस मात्रा से कोई रचना कविता के योग्य बनती है उस तनाव

को किसी बड़े आकार म या लम्बे रचना विधान मे बराबर बनाए रखना सभव नही है।[1] यहा पो छोटी कविता या प्रगीत के तनाव सबधी प्रतिमान को लम्बी कविताओ के विधान पर लाद रहे हैं। तनाव सबधी जो धारणा पो के मन म है वह प्रगीत या छोटी कविताओ पर आधत है। पो जिस तनाव की बात कहत हैं वह एक मनोदशा तक सीमित रह जाने वाला तनाव है। विभिन्न मनोदशाओ का बोध जगाने वाले तनाव की प्रकृति छोटी कविता की तनाव सबधी धारणा मे भिन्न होगी ही। पो की इस धारणा का कि कोई भी लम्बी रचना सदैव समान रूप से तनाव की तीव्रता को कायम नही रख सकती, का खडन टी० एस० इलियट ने अपने एक निबन्ध मे यह कहकर किया है कि लम्बी कविता म तनाव और विश्रान्ति की क्रिया मूवमट आफ टेंसन एण्ड रिलाक्सेशन रहती है। मैंने अन्यत्र इस सबध म लिखा भी है कि लम्बी कविता के सरचनात्मक विकासक्रम म एक तनावपूर्ण अश या परिच्छेद के बाद निहायत सीधा सादा, सपाट, गद्यात्मक अश या परिच्छेद भी रह सकता है जो पूववर्ती तनाव दशा के परिप्रेक्ष्य मे या समग्र कविता के सदभ म साथक हो।[3] लम्बी कविता म इस तरह के सरचनात्मक सतुलन को साधना और कायम रखना जरूरी है। इलियट ने 'द वाइडेस्ट पासिबिल वरीएशज आफ इटेंसिटी'[4] की ओर सकत करके लम्बी कविता मे उपस्थित तनाव के विविध रूपा और स्तरो के सजनात्मक उपयोग की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। सजनात्मक तनाव के इन विविध रूपा और स्तरो को वास्तविक स्थितिया के सदभ म रखना और उनके दबाव को झेलना लम्बी कविता की रचना प्रक्रिया की अनिवाय शत है।

सर्जनात्मक तनाव की बनावट और प्रकृति को समझना भी बहुत जरूरी है। इस तनाव के पीछे भावना है या विचार अनुभव है या बिंब या अनुभव और विचार की सश्लिष्ट प्रवृत्ति, यह जानना जरूरी है। केवल भाव स्फूर्त तनाव कविता को लम्बाई मे फैला जरूर सकता है, उसे लम्बी कविता नही बना सकता। हा

---

1 आई होल्ड दैट ए लाग पोयम डज नाट एग्जिस्ट। आई मनटेन दैट दि फ्रेज, 'ए लाग पोयम' इज सिम्पली ए फ्लैट कटराडिक्शन इन टमज दैट डिग्री आफ एक्साइटमट विच वुड इनटाइटल ए पोयम टु बी सो काल्ड … आन कैन नाट बी सेसटेंड थ्रू आउट ए कम्पोजिशन आफ एनी ग्रेट लैंथ'।

फिलिप वान डारिन (स०) दी पोर्टेबल पो, (दी वाईकिंग प्रेस 194९) पृ० 568

2 टी० एस० इलियट परोज एण्ड वर्स चेप बक सख्या 22 (अप्रल 1921) पृ०

3 नरेन्द्र मोहन लम्बी कविताओ का रचना विधान पृ० 7

4 टी० एस० इलियट टु क्रिटिसाइज दि क्रिटिक एण्ड अदर एस्सेज (फ्रबर एण्ड फ्रबर लन्दन 1965) पृष्ठ० 34

भावावेश अगर किसी बात को लेकर हो, वह बात किसी दूसरी बात से जुड़ी हो दूसरी बात किसी तीसरी बात से, तो लम्बी कविता मे उसकी सार्थकता हो सकती है।[1] इसके लिए अनुभव और विचार का रचनात्मक विधान जरूरी है। कविता म अनुभव और विचार के विशिष्ट समीकरण को साध कर ही भावुकतापूर्ण और अनुभववादी धारणाओ से मुक्ति पाई जा सकती हैं। इस ओर विद्यानिवास मिश्र ने भी सकेत किया है 'कुछ के सामने दूसरी ही लाचारी है, वह है सघन भावुकता से बचने के लिए जो एक निमम बौदिधक प्रयत्न हो, उसके लिए कुछ अतिरिक्त स्पष्टीकरण, बातो को कहने के लिए कई प्रकार की भगिमाए, बातो को एक दूसरी बात से काट कर पुन तीसरी बात स काट कर धीरे धीरे उत्कर्ष शिखर रचने का सकल्प, यह सारी चीजें जरूरी हो जाती है'[2] यह निमम बौदिधक प्रयत्न लबी कविता की वचारिक बनावट की ओर सकेत है जहा बातो को एक दूसरी बात मे काट कर, पुन तीसरी बात से काट कर धीरे धीरे उत्कर्ष शिखर रचने का सकल्प रहता है। इससे लम्बी कविता आटो राईटिंग नही रह जाती। इसमे न आत्म का लोप होता है, न वहत्तर सदर्भों का। इसम दोनो का नियोजन टकरावपूर्ण रहता हैं। इस टकराव और इससे उत्पन्न तनाव की अभिव्यक्ति के लिए वैचारिक सवेदना या मुक्तिबोध के शब्दो म 'ज्ञानात्मक सवेदना' ही एक मात्र उपाय है। इसे ही मैं अनुभव और विचार का सयुक्त रचना विधान कहना चाहूगा। लबी कविता के लिए यही सर्वाधिक उपयुक्त रचना विधान हो सकता है।

अनुभव और/या विचार के लगातार दबाव से या किसी विधायक बिंब या रूपक की लगातार केंद्रीय स्थिति से ही सजनात्मक तनाव निष्पन्न होता है। इसके बिना लबी कविता की (लबी कविता की सरचना भले कितनी ही अराजक क्यो न बना दी जाए।) कल्पना नही की जा सकती। सजनात्मक दृष्टि से लबी कविता मे विधायक बिंब या रूपक और इसके सरचनात्मक वैविध्य बिखराव और खुलेपन मे विरोध नही है। इसी बिंदु पर बिंब और विवरण और विचार कवि के अभिप्राय को गहराते हैं। इसे प्रतिभाशाली कवि ही साध पाते हैं। इसे न साध पाने के कारण क्रेन की लबी कविता 'द ब्रिज' असफल रह गई और इसे साध लेने की वजह से विलियम कार्लोस विलियम्स की लबी कविता 'पेटरसन' एक महत्वपूर्ण लबी कविता बन गई।

लबी कविताओ की रचना प्रक्रिया का प्रश्न, अतत इनकी अन्विति के स्वरूप से भी जुड़ा हुआ है। लबी कविता ऊपर से विशृ खल और अराजक लग सकती है पर भीतर से सगठित हो सकती है। लबी कविता मे यह अन्विति सीधी और

1 देखिये एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध प 26
2 कल्पना (अप्रैल 1974) पृ० 54

तार्किक नहीं होती। अनेक प्रसगो, कथात्मक अशा और सदर्भों-सकेता का असबद्ध सा दिखने वाला वर्णन चित्रण इसमें रह सकता है, पर इस असबद्धता में ही सबद्धता और अन्विति के आतरिक, सजनात्मक सूत्र विद्यमान रह सकते है। यह अनुमान किया जा सकता है कि लबी कविता का गठन जहा बिंबात्मक हो वहा आवयविक और अखडित दिखे और जहा बिंब सकेन्द्रण पर आग्रह न होकर सदर्भों और प्रसगो की सन्धि और टकराव पर बल दिया गया हो वहा अन्विति शिथिल और खडित दिखे। लबी कविताओं में अन्विति के ये दोनो ही प्रकार—बिंबात्मक और वैचारिक मिलते है। पहले प्रकार की अन्विति में सभी विवरण, सदर्भ और प्रसग केन्द्रीय बिंब द्वारा सतुलित रहते हैं तो दूसरे प्रकार की अन्विति में किन्हीं विचार-सूत्रों से जुड़े बिंबों का अनवरत क्रम। इलियट बिंबात्मक विधान और सपाटबयानी को, सयुक्त रूप से, अपनी लबी कविताओं में महत्त्व देते प्रतीत होते हैं तो एजरा पाउड सदर्भों के विपर्यास को बिंबात्मक क्रम में बाधने का प्रयत्न करते है, उनकी बिखरी हुई सत्ताओं को बिंबो के माध्यम से अभिव्यक्त करते है। गठन के ये दोनो प्रकार एक साथ भी किसी लबी कविता में रह सकते हैं—एक दूसरे से टकराते हुए, एक दूसरे को पुष्ट और समृद्ध करते हुए। एक आख्यान और बिंब से शुरू करके विचार की दिशा में बढ सकता है, दूसरा विचार से शुरू करके बिंब विधान की ओर। यह प्रक्रिया बिंब से बिंब की ओर या विचार से विचार की भी हो सकती है। वसे बिंब और विचार का तनाव लबी कविता की सरचना का मूल आधार है। तब यह बात विशेष महत्त्व नहीं रखती कि पहले बिंब विचार में बदला या विचार बिंब में। पाउड 'केंटोज' के विधान में शुरू में लापरवाह दिखते हैं। सदर्भों, प्रसगो, स्थितियो और परिस्थितियो को पहले एक अराजक विस्तार में उठाते है और बाद में उनमें किसी विचार सूत्र की खोज में तल्लीन हो जाते हैं पर उनकी पद्धति शुरू से अत तक, कोरमकोर बिंबधर्मा है। इलियट शुरू से ही अपनी कविता 'वेस्टलैंड' में विधायक रूपक को तानते है पर वे रूपक के तनाव को कथात्मक स्थितियों पर हावी नहीं होने देते, विवरणो के सयोजन द्वारा वे तनाव को बीच बीच में कम या ढीला करते जाते है, जिससे तनाव और स्थितियो में एक प्रकार का सतुलन आ जाता है। इलियट की लबी कविताओं के विधान का यह एक विशेष गुण है। हिंदी की लबी कविताओं में इस सरचनात्मक विशेषता को अपेक्षाकृत अधिक ग्रहण किया गया है। या, दोनो ही प्रकार की अच्छी लबी कविताओं के उदाहरण हिंदी में भी मौजूद हैं। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में आख्यान के सहारे सजनात्मक तनाव को बिंबात्मक रूप में प्रतिफलित किया गया है जबकि मुक्तिबोध की कविता —'अधेरे में' में बिंब और विवरण पूरे काव्यात्मक विधान को सतुलित किए हुए हैं। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' आख्यान से बिंब की ओर प्रस्थान का उदाहरण है तथा राजकमल चौधरी की कविता 'मुक्ति प्रसग'

तनाव को केंद्रीय बिंब प्रतीक द्वारा संयमित करने का उदाहरण है।

लंबी कविता की अन्विति को प्रगीत के संदर्भ में रखकर अच्छी तरह से समझा जा सकता है। प्रगीत में अन्विति का जो रूप मान्य है वह लंबी कविता के काम का नहीं। प्रगीत में आवयविक गठन का विशेष ध्यान रखा जाता है जबकि लंबी कविता में स्थितियों और संदर्भों का टकरावपूर्ण संयोजन रहने से आवयविक अन्विति अनावश्यक है। प्रगीत में अन्विति सीधी, सपाट सतह पर झलकती दिख जाती है — एक क्रम में, एक तर्क में, एक निष्कर्ष में ढली और परिणत हुई जब कि लंबी कविता अपने रचना विधान में क्रम और निष्कर्ष का प्रायः अतिक्रमण कर जाती है। दूसरे प्रगीत की संरचना, मुख्यतः, भावमूलक या भावना प्रधान होती है जबकि लंबी कविता की संरचना में विचार या वैचारिक अनुभूति का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। मुक्तिबोध की लंबी कविताओं की बनावट से ही पता चल जाता है कि वे भाव द्वारा आस्फालित कविताएं नहीं हैं। वे अनुभूति और विचार के टकरावपूर्ण विन्यास के कारण अनिवार्यतः लंबी हो गई कविताएं हैं। तीसरी बात, प्रगीत में संवेदना का स्वरूप आत्मपरक रहता है जबकि लंबी कविता में यथार्थपरक। आत्मपरक कथ्य प्रगीत या छोटी कविता में समा जाता है पर यथार्थ की जटिल संवेदना को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न में कविता के लंबी हो जाने की संभावना रहती है। पर यह कोई अटल नियम नहीं है। डॉ० नामवरसिंह ने ऐसी कविताओं की ओर (जिनमें से मुख्य हैं श्रीकांत वर्मा की 'समाधि लेख', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध', राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग') संकेत किया है जो अपनी काव्यानुभूति में आत्मपरकता का आभास देते हुए भी वस्तुतः संरचना में अप्रगीतात्मक हैं।[1] इस तरह लंबी कविता का प्रतिमान प्रगीत के प्रतिमान से भिन्न है। लंबी कविता पर छोटी कविता या प्रगीत की अन्विति के नियम लागू नहीं किए जा सकते। प्रगीतात्मक अन्विति की अभ्यस्त दृष्टि से इसका जायजा या विश्लेषण भी नहीं किया जा सकता।

लंबी कविता के रचना विधान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है—नाटकीयता। इसके बिना आज के जीवन की अंतर्विरोधों भरी स्थितियां उजागर नहीं हो सकतीं। स्थिति के पीछे की स्थितियां व्यवहारों, मानसिक आत्मिक क्रिया कलापों का अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान लंबी कविता के लिए जरूरी माना जा सकता है। कार्यों और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अंतर्विरोधों का बोध जगाया जा सकता है। इसमें नाटकीय संवादों की योजना विशेष कारगर हो सकती है। लंबी कविता की संरचना में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता है वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर संपन्न

1 देखिए डॉ० नामवरसिंह की पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान', पृ० 152

हो सकता है।

लंबी कविताओं की सरंचना पर विचार करना जरूरी लगता है। इसके साथ रचना प्रक्रिया और रचना पद्धति संबंधी कई प्रश्न लिपटे हुए हैं। लंबी कविताओं की रचना प्रक्रिया में से गुजरते हुए और उनकी प्रदीर्घता को लक्षित करते हुए स्वयं मुक्तिबोध ने यह प्रश्न उठाया है 'क्या उसको काट-छाँट कर छोटा कर दिया जाए या उसके भीतर जो बातें, जो गुत्थियां, जो समस्याएं प्रकट हुई हैं, उसके विस्तारात्मक विकास के लिए अवसर और स्पेस प्रदान किया जाए? दूसरे शब्दों में, क्या मेरी कविता के अंतस्तत्त्वों को (अभिव्यक्ति के लिए) विकास का अवसर दिया जाए'?[1] इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं मुक्तिबोध ने लिखा है 'मैं उसको विकास और प्रसार का अवसर देने के पक्ष में हूं।'[2] काव्यानुभूति में निहित और उसके वृत्त को फैलाने-बढ़ाने वाली बातों, गुत्थियों और समस्याओं को, जिनकी वजह से वह कविता लंबी और बड़ी बन रही हो, अप्रासंगिक या असंबद्ध करार देकर, बाहर निकाल देने की सिफारिश करना या ऐसी प्रदीर्घता को काट छांटकर छोटा कर देना पुरानी काव्य दृष्टि का परिचय देना है और समस्या से कतराना है। लंबी कविता के सरंचनात्मक विधान की शक्ति इसमें है कि उसके माध्यम से गौण समझी जाने वाली बातों, समस्याओं के ब्योरों को केंद्रीय अनुभूति या विचार के संदर्भ में तान करके सार्थक बनाया जा सकता है और बिना किसी बाह्य अनुशासन के रचनात्मक संतुलन अर्जित किया जा सकता है। सरंचना से जुड़ा दूसरा प्रश्न यह है कि लंबी कविताओं में कथाओं आख्यानों, प्रसंगों संदर्भों तथ्यों उद्धरणों को कैसे नियोजित किया जाए? उनका रचनात्मक संतुलन और संयोजन मूल संवेदना या विचार से कैसे बढ़ाया जाए? क्या लंबी कविताओं में इनकी अलग सत्ताएं कायम रहें या कविता की विधायक रूपात्मक चेतना में घुल जाएं या उसी को प्रतिभासित करें? लंबी कविताओं में कथाओं, संदर्भों संकेतों, प्रसंगों और उद्धरणों के विवरण और चित्रण रह सकते हैं। पर इन तमाम प्रसंगों और संदर्भों द्वारा एकजुट रूप में कविता के नाभिक केंद्र पर आघात पड़ना चाहिए, उनकी अलग अलग चमक नहीं दिखनी चाहिए। अनपेक्षित कथागत विस्तार और तथ्यगत सूचियां विधायक अंतर्चेतना से संबद्धता के अभाव में लंबी कविता के लिए घातक हो सकती हैं। इनका उपयोग और सार्थकता तभी है अगर इन्हें कविता के संवेदना वृत्त और विचार वस्तु के संदर्भ में क्रमवार नियोजित किया जाए। रचनागत शैथिल्य या लापरवाही लंबी कविता को ले डूबती है। अभिव्यक्ति का अपव्यय—अतिकथन और अतिरिक्त कथन इसमें कोढ़ की तरह चमकता रहता है। इसीलिए विभिन्न सरंचनात्मक पहलुओं में संतुलन बनाये

1 मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी पृ० 26
2 वही पृ० 26

रचना लंबी कविता के लिए और भी जरूरी है।

लम्बी कविताओं के विन्यास में आनुषंगिक भावनाओं, विचारों, प्रसंगों और तथ्यों को काव्यात्मक संवेदना और केंद्रीय विचार के संदर्भ में रचना और तानना जरूरी है। ये सब काव्यात्मक अंतर्चेतना से सम्बद्ध होकर तथा तानकर ही लम्बी कविता के विन्यास को समृद्ध करने में सहायक बनते हैं। इसके लिए कल्पनात्मक शक्ति की जरूरत है जिसके अभाव में लम्बी कविता अमूर्त और आडम्बरपूर्ण लग सकती है।[1] कल्पना द्वारा संदर्भों का अन्तर्गुम्फन और टकराव संभव बनता है, संवेदना का स्वरूप जटिल और उसके संदर्भ व्यापक बनते हैं। एक पद्धति यह है कि कवि मिथकीय संयोजन में फैंटेसी के विधान में प्रवृत्त होता है और साथ ही रचनात्मक तनाव की स्थिति में 'अतीत प्रसंगों में प्रतिगमन कर जाता है और इस प्रकार अपनी अन्तर्यात्रा के असम्बद्ध से दिखने वाले पड़ावों, विवरणों और विशृंखल प्रतीत होने वाली भावानुभूतियों को काव्यात्मक संरचना में गूंथ देता है'। हिंदी की विशिष्ट लम्बी कविताओं 'राम की शक्ति पूजा', 'प्रलय की छाया', 'मुक्ति प्रसंग' और 'अंधेरे में' में इस पद्धति का अच्छा प्रयोग हुआ है। दूसरी पद्धति है शब्दों के सामान्य अर्थों को उलट कर विरोधी भावों विचारों की व्यंजना करना। वाल्ट ह्विटमन ने विरोधी भावों विचारों की ओर संकेत करते हुए अपनी एक कविता 'क्रासिंग ब्रुकलिन फेरी' में लिखा है 'आइ टु निटेड दि ओल्ड नॉट आफ कान्ट्रेरिटी।'[3] विभिन्न संदर्भों को भाषा द्वारा गहरा करने या शब्दों के परम्परित अर्थों को बदल देने या उलट देने मात्र से लम्बी कविता विशिष्ट बन सकती है जैसे रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' या विजयदेव नारायण साही की कविता 'अलविदा'। कई बार केवल लय द्वारा इस संतुलन को साध लिया जाता है जैसे जयशंकर प्रसाद की कविता 'प्रलय की छाया' में। आवर्तियों में निहित विभिन्न प्रकार के अर्थ संबंधों के तालमेल की पहचान द्वारा भी काव्यात्मक व्यवस्था अर्जित की जा सकती है। 'अंधेरे में' और 'असाध्य वीणा' में इसे लक्षित किया जा सकता है।

हिंदी में लंबी कविता के इतिहास की शुरुआत कब से मानी जाए? क्लासिकल

1 दि नागर डिस्करसिव पोयट्री सीम्ड टु मी वरी ऑफन डिफयुज्ड एण्ड टरगिड आपरेटिंग इन्टर वाइ टु मेनी परटीकुलर टु निटम एमजड आर बाई ए रिटॉरिक टु एलाजड फार दी फोनिय होवड निमिरोव पोयट्री एण्ड फिक्शन (रटयस यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू जर्सी 1963) पृ० 198

2 बाई रिग्रेशन अनप्रटेन्ड इमाशन कन वी इंटिग्रेटड इटु ए पार्टिकुलर स्ट्रक्चर स्टीफन ए० क्लवर्नीज इन केओस (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन 1975) पृ० 132

3 एडविन फयूसेन स्यूसिफर इन हार्नेस (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन 1973) पृ 63 पर उद्धृत।

रचना विधान की जकड़बंदी से मुक्त होने की छटपटाहट को कैसे रेखांकित किया जाए? क्या सुमित्रानंदन पंत की कविता 'परिवर्तन' से(कविता-संग्रह 'पल्लव', 1923) जयशंकर 'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' से (कविता संग्रह 'लहर', 1933) अथवा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' से (कविता-संग्रह 'अनामिका' 1937,) से। प्रारंभ में लंबी कविताएं महाकाव्यात्मक अपेक्षाओं से संबद्ध होकर ('प्रलय की छाया', राम की शक्ति पूजा) आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लेकर उदित हुई थीं। हां, 'परिवर्तन' प्रारंभिक दौर की ऐसी कविता जरूर है जो किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन संबंधी धारणा को आवेशपूर्ण ढंग से विचारात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। यह कविता कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं, अपने विन्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लंबी कविता मानी जा सकती है।

छायावाद युग की लम्बी कविताएं—'परिवर्तन', 'प्रलय की छाया,' और 'राम की शक्ति पूजा' (इन तीनों कविताओं के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिये मेरा निबंध 'आख्यान से बिम्ब से विचार तक की अन्तर्यात्रा' 'लम्बी कविताओं का रचना विधान' दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि०, दिल्ली, पृ० 9 11) उस दौर की कविताएं हैं जब प्रबंधात्मक रचना विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्व और प्रासंगिकता के बारे में किसी को संदेह नहीं था। ध्यान देने की बात है कि ये तीनों कविताएं उन कवियों द्वारा रचित हैं जो छायावादी कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। क्या इन लंबी कविताओं की संरचना पर उनकी प्रगीतात्मक प्रतिभा और रोमैंटिक संस्कारों रुझानों का प्रभाव नहीं पड़ा होगा? यह प्रश्न भी हो सकता है कि इन कवियों ने अपनी कल्पना को प्रबंधात्मक रूढ़ियों से कैसे और कितना मुक्त रखा और लंबी कविता के रूप में सिरजा? इन कविताओं की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही अपने रचनात्मक अभ्यासों और रचनाशील मानसिकता से जूझे होंगे और उन्हें अपने अभ्यस्त प्रगीतात्मक रूप विधान की सीमाओं से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर संघर्षरत होना पड़ा होगा। इस जूझने और संघर्षरत होने के दौरान, अपने को निर्ममतापूर्वक शोधन और संशोधित करने के बावजूद यह संभव है कि उनकी लंबी कविताओं की संरचना में प्रगीतात्मक और प्रबंधात्मक रूढ़ियां बनी रही हों। यह रुचिगत बदलाव महज रूपगत बदलाव का परिणाम नहीं है बल्कि संवेदना और विचार के बदलाव का भी सूचक है। छायावादी कवियों की रचना प्रक्रिया का यह एक विशिष्ट बिंदु है कि वे प्रगीत और / या प्रबंध जैसे रूप विधानों में काव्य-सृजन के बावजूद, लंबी कविता के रूप तथा विन्यास की ओर आकर्षित हुए।

हिंदी की प्रारंभिक लम्बी कविताओं में आख्यान का विशेष महत्व है। इसका कारण शायद यह है कि ये कविताएं तब प्रबंधात्मक ढांचे की जकड़बंदी से मुक्त

होने की कोशिश मे उभरी थी, पर आख्यान के काव्यात्मक सस्कार को और उससे लिपटे हुए सास्कृतिक अभिप्रायो को जो उनकी सवेदनाओ के रचनात्मक, सार्थक प्रतिफलन म सहायक हो सकते थ, छोड पाना उनके लिए कठिन था। आख्यान को उन्होने पुराने वर्णनात्मक तरीके से नही बल्कि प्रतिगमन (रिग्रेशन) के विधान द्वारा अपनी कविताओ म ढाला है। *निराला की लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा'* म मिथकीय सयोजन की सगति म उभर रही परस्पर गुम्फित भावनाओ, कल्पनाओ और विचारो को देखा जा सकता है। पुराकथा का रचनात्मक विधान इस कविता म खडकाव्य या महाकाव्य के ढाचे के रूप म न होकर, लम्बी कविता के रूप म है। भावनाओ और मनोदशाओ के सान्निध्य और टकराव से यह कविता लम्बी हो गयी है। चरित्र और परिस्थिति के घात प्रतिघात, राम के सशय और उद्विग्नता को उभारते है। राम की अतश्चेतना से जुडे प्रसग (सीता का स्मरण) स्थिति को गहरा देते हैं। अतीत प्रसगो मे प्रतिगमन या प्रत्यावर्तन आनुषगिक प्रसगो, असम्बद्ध भावनाओ और बिम्बो को दृढतापूर्वक कविता की केंद्रीय स्थिति से जोड देते है।

छायावादी लम्बी कविताओ के बाद नरेश मेहता की 'समय देवता' और धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्यु गाथा' जैसी लम्बी कविताए नयी कविता आदोलन के दौरान लिखी गयी जो तार्किक और भावनात्मक परिणतिया म ढली हुई हैं। इन दोनो कविताओ म नयी कविता के मानववादी आशयो की भरमार है। यहा आख्यान अपने स्थूल कथात्मक रूपो मे न होकर या तो दृष्टिकोणो के हिस्से बने हुए है या बिम्बो मे ढले हुए है। 'समय देवता' कविता म ज्ञान धारणात्मक सतह पर व्यक्त हुआ है, व्यापक जागरूकता के रूप म नही। ज्ञान यहा भावात्मक सवेदना या विचार म रूपातरित होता हुआ नही दिखता। काव्यात्मक अभिप्राय है 'समय देवता/ऐसे समय तुम्हे मेरी पृथ्वी का परिचय प्राप्त हुआ है/जबकि युद्ध की चीलो के मुह से हड्डी की गध आ रही है/युद्धो के दर्रो म मानव लुटा हुआ सा आज एक मदान चाहता है/और चाहता दश देश की अपनी कटी नदियो को जोड,खेत म पानी देना। इस अभिप्राय का सपूर्ण कविता मे विधान करने वाली दृष्टि का यहा अभाव है। भर्त्सना और शुभाशसा के स्वर यहा अलग अलग कथित है, एक अच्छी कलात्मक बिबात्मक कविता के बावजूद यह कविता अपनी प्रकृति म धारणात्मक है वैचारिक नही। धर्मवीर भारती की कविता 'प्रमथ्युगाथा' म (कविता सग्रह सात गीत वर्ष, 1959) कथा मक ब्यौरे बेशक नही हैं, पर पूरा कथा के प्रमुख पात्रो की मन स्थितिया मनोदशाओ को एक दूसरे के साथ सटा करके उनके क्रम विन्यास की पद्धति अपनायी गई है। यहा प्रमथ्यु जुपिटर, अग्नि और गद्ध सभी एक यातनापूर्ण स्थिति के बारे मे अपना-अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं। इन वक्तव्यो द्वारा पात्रो की धारणाओ और मनोदशाओ की जानकारी तो

मिलती ही है, 'मुक्तिबोध' को सून और जुड़ने लगते हैं। स्थिति के बारे में पात्रगत दृष्टिकोणों का कथन किया गया है। ये दृष्टिकोण और उनकी व्याख्याएं परस्पर [illegible] नहीं [illegible] किसी नाटकीय विधान में ढलती हैं। काव्यात्मक आशय की पहचान कविता के अंत की इन पंक्तियों से हो सकती है 'कोई तो ऐसा दिन होगा/जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर/उसके मन को बेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगाएंगे।' कुल मिलाकर यह नई कविता का मानवतावादी आशय ही है।

प्रस्तुत संकलन में विगत 15-16 वर्षों में प्रकाशित और चर्चित दस विशिष्ट लम्बी कविताओं को लिया गया है। ये कविताएं लम्बी कविता के तीसरे और समकालीन दौर की कविताएं हैं। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' से लेकर मणि मधुकर की 'घास का घराना' तक में समकालीन लम्बी कविता में उत्तरोत्तर उभरने वाले नये रूपों और स्तरों को पहचाना जा सकता है। इस दौर की लम्बी कविताएं स्थिति के ब्यौरों तक सीमित नहीं रही हैं बल्कि वे स्थितियों की सघन चेतना की ओर उन्मुख करने वाली हैं। इनकी बनावट बौद्धिक वृत्तियों से अनुशासित है या वैचारिक अनुक्रियाओं से। इनमें आख्यान से बिम्ब से विचार तक जो अन्तर्यात्रा की गयी है वह इसके संरचनात्मक बिन्दुओं की खासियत को ही नहीं उभारती, ऐतिहासिक संगति और सार्थकता के बिन्दुओं को भी रेखांकित करती है।

'अज्ञेय' की लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' (कविता संग्रह 'आंगन के पार द्वार', 1961), मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' (कविता-संग्रह 'चांद का मुंह टेढ़ा है' 1964) और रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' (कविता संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' 1967) कविताओं का संगठन बौद्धिक है पर इनकी बौद्धिकता अलग-अलग स्थिति, प्रेक्ष्य बिन्दु, टोन और मुहावरे की वजह से बदल गई है। 'असाध्य वीणा' की बौद्धिकता तर्काश्रित है —कथा को एक निश्चित अनुक्रम में प्रस्तुत करने वाली। कविता में से उभरने वाली, परस्पर टकराने वाली विचार पद्धति यहां नहीं है। यहां कविता में एक विचार को सिद्ध करने का प्रयास है। कविता विचारों के दबाव से नहीं, कथा के दबाव से आगे बढ़ी है, लम्बी हुई है। यहां सीधे-सादे रूप विधान में कथा का एक सीधा अनुक्रम रखा गया है। यहां सपाट कथन पद्धति न होकर बिम्बधर्मिता है। छोटे छोटे बिंब उभरते जाते हैं और कविता के विराट बिम्ब में लय हो जाते हैं। पर मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' में ऐसा नहीं है। समाहार प्रवृत्ति यहां नहीं है। चीजों की संभावनाएं यहां खत्म या अवरुद्ध नहीं हुई हैं बल्कि तनाव सूत्रों द्वारा बढ़ती फैलती गयी हैं। यह कविता इतिहास को समाकलित करने वाली कविता ('पोयम इन्क्लूडिंग हिस्ट्री') है –

तथ्यों, घटनाओं या आंकड़ों के रूप में नहीं, अंतरंग सारी परिप्रेक्ष्य, संवेदन और विचार के रूप में। यहां आत्मिक स्मृतियां ऐतिहासिक स्मृतियों में घुल गयी हैं, गुंथ गयी हैं। इतिहास बोध की इस दृष्टि ने ही इस कविता में यथार्थ की प्रकृति को जटिल और संश्लिष्ट बना दिया है। यथार्थ संबंधी भावनाएं और विचार यहां क्रमश: खुलते गए हैं—आत्मपरक और वस्तुपरक संदर्भ अंतर रूपांतरित होते गये हैं। यह यथार्थ दृष्टि शिल्प और संरचना के नए विधान में ढल कर कविता में आए विवरणों, तथ्यों, संदर्भों और संकेतों को अर्थवत्ता प्रदान करती है तथा अराजक, असम्बद्ध दिखने वाले प्रसंगों, भावनाओं को केंद्रीय विचार से कसकर जोड़ देती है। बिखरे हुए संदर्भों को, इतिहास संदर्भ में तारतम्य देने में मुक्तिबोध को सफलता प्राप्त हुई है।

रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' एक वैचारिक लम्बी कविता है। इसके रचना विधान में भावुकता लेश मात्र भी नहीं है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' में कवि स्थिति का निर्मम होकर जायजा लेता है और उसे पड़तालता है उससे भिड़ने के लिए अपनी शक्ति तोलता है। परिस्थिति से टकराने वाले व्यक्ति की वास्तविक स्थिति को यह कविता प्रत्यक्ष कर देने में समर्थ है 'कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा/न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अंदर कायर टूटेगा टूट मेरे मन टूट एक बार सही तरह/अच्छी तरह टूट मत झूठ मूठ रूठ/मत डूब सिर्फ टूट।' समकालीन राजनीतिक, साहित्यिक, संदर्भों और व्यक्तिवाची संज्ञाओं का प्रयोग इस कविता की एक अलग बानगी प्रस्तुत करता है। 'समय आ गया' की पुनरावृत्ति इस कविता के विधायक अंतःसाम्य को तथा बाहरी दुनिया से उसकी संगति को स्पष्ट करने की क्षमता रखती है।

समकालीन संदर्भ में वैयक्तिक अनुभव को सामाजिक अनुभव की संनिधि में रखने वाली तथा समूचे बाह्य यथार्थ का आंतरिक स्तरों पर सृजित करने वाली लम्बी कविताएं भी लिखी गयी हैं। इनमें राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसंग' (कविता संग्रह 'मुक्ति प्रसंग' 1966) उल्लेखनीय है। इस कविता की संरचना में वैयक्तिक और सामाजिक स्थितियां और संदर्भ इस कदर अंतसम्बद्ध हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। उनकी समानांतर बुनाई विशेष कौशल से की गई है कोई शिकायत नहीं है मुझे उसमें कोई शिकायत नहीं है उन लोगों से मुझे/जो न्यूजप्रिंट पर लिख रहे हैं मेरे देश का इतिहास/अथवा मेरे शरीर का आख्यान टेम्प्रेचर चार्ट पर। इस कविता में स्वाधीनता के बाद की भयावह स्थिति का मात्र चित्रण नहीं है उस स्थिति का भीतरी स्थिति के समानांतर रखकर देखा गया है। इसी संदर्भ में कवि बाहरी स्थितियों के दबाव से जुड़ी हुई अपनी अंतरंग पीड़ादायक सचाई को व्यक्त करता है क्या एक ही युद्ध मरी कमर की हड्डियों में और कभी वियतनाम में होता है। इस स्थिति का सामाजिक राजनीतिक संदर्भ उभर

कवि ने स्थितिगत विसंगति को उघाड़ा है और उसे अधिक व्यापक और सघन बना दिया है। इस 'गतिहीन वर्तमान में' अपने 'होने के बावजूद न हो पाने' की विडबना का यातनापूर्ण एहसास यहीं से उत्पन्न हुआ है। यह स्थिति या नियति का बखान नहीं, कविता में आज के आदमी की स्थिति या नियति का चरितार्थ होना है।

पर यह भी सही है कि 'मुक्ति प्रसंग' में वाग्मितापूर्ण कथन को गौरवान्वित किया गया है। स्थिति को चित्रित करने वाला मुहावरा यहाँ उत्तेजक और अत्युक्तिपूर्ण है। स्नायुविक तनाव में रचित होने के कारण इसमें स्थिति का भावुक आस्फालन भी हुआ है। इससे बचा जा सकता था अगर कविता के बीच-बीच में सार्थक विवरणों की योजना की जाती। भाषायी विन्यास में, वाक्य गठन और योजना में व्याप्त तनाव विवरणों द्वारा भी संतुलित हो सकता था पर कवि ने यह रास्ता नहीं चुना, उसने प्रतीक का रास्ता चुना है। इस कविता में संतुलन पैदा करने का साधन है—केंद्रीय प्रतीक—'उग्रतारा' है। यह प्रतीक 'रहटरित' को भी मानवीय स्थिति से जोड़ देता है। 'उग्रतारा' ऐसा ही केंद्रीय प्रतीक है। इस प्रतीक के माध्यम से अंतर्वर्ती एकसूत्रता को साधा गया है।

ऐतिहासिक संदर्भों की ठोस उपस्थिति में मौजूदा यथार्थ स्थिति के संदर्भ में मानवीय विडंबना और संघर्ष की चेतना का साक्षात्कार इधर की कई लंबी कविताओं में—धूमिल की कविता 'पटकथा (कविता संग्रह संसद से सड़क तक', 1972), बलदेव वंशी की कविता 'उपनगर में वापसी' (कविता संग्रह 'उपनगर में वापसी', 1974), अमृता भारती की कविता 'आज या कल या सौ बरस बाद,' (कविता संग्रह 'आज या कल या सौ बरस बाद' 1975), लीलाधर जगूड़ी की कविता 'बलदेव खटिक' (कविता संग्रह बची हुई पृथ्वी,' 1977) मणि मधुकर की घास का घराना' (कविता संग्रह 'घास का घराना तथा अन्य कविताएँ', 1978) देखा जा सकता है। हाँ, उनके सरचनात्मक बिंदु और संघर्ष चेतना के स्तर अलग-अलग हैं। 'पटकथा' में आजादी के मोहक स्वप्न के टूटने, देश, जनता जनतंत्र, देशभक्ति जैसी धारणाओं के भ्रष्ट और विघटित होने के परिणामस्वरूप पैदा हुई स्थिति के परिप्रेक्ष्य को ('टूटी हुई चीजों के ढेर में/खोई हुई आजादी का अर्थ/ढूंढता रहा।') ग्रहण किया गया है। मूल्यगत विघटन के इस दौर में 'मैं' को महसूस होता है कि वह वक्त के एक शर्मनाक दौर से गुजर रहा है। उसे लगता है उन्होंने किसी चीज को सही जगह नहीं रहने दिया है। तभी उसका सामना अपने हमशक्ल में होता है जो उसे संघर्ष के लिए उकसाता है। और, उसे लगता है—'भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क/रोटी है' और वह उनको आकार देने में जुट जाता है। 'मैं' और 'हमशक्ल' के नाटकीय विधान के बिना यह कविता एक सामान्य कविता—ऐतिहासिक तथ्यों और स्थितियों का बयान करने वाली कविता

ही रह जाती। नाटकीय प्रसग से पूव इस कविता म भी ब्यौरे अधिक हैं और रहटरिक का दबदबा है। इस अश म 'परिदृश्यगत सघनता के साथ सयत अभिव्यक्ति के अनुशासन'[1] को कवि साध नहीं सका है। कविता के उत्तरार्द्ध मे नाटकीय विधान के कारण सपाटबयानी विशिष्ट काव्यात्मक व्यवहारो मे अवश्य चरितार्थ हुई है। विकल्प और 'पूजीवादी दिमाग' की टकराहट भी यही उभरी है।

'उपनगर मे वापसी' कविता मे स्वतत्रता परवर्ती ऐतिहासिक सदभ मे व्यक्ति की विडम्बनापूण स्थिति और सघपशीलता का अच्छा चित्रण हुआ है। शहर के बनने और उठने के क्रम के साथ सोचते हुए शहरी सस्कृति के दबावो और तनावो को झेल रहे व्यक्ति की अभिव्यक्ति इस कविता म हुई है। व्यक्ति की मन स्थिति पर आघात देने वाली इस तरह की स्थितिया-परिस्थितिया का सयोजन कवि ने अत्यत जागरूक होकर किया है और इस सयोजन म से ही सवेदना निष्पन्न हुई है पूरे उपनगर म वही एक स्वतन्त्र है जो पागल है। यहा स्थिति का मात्र चित्रण नहीं किया गया है बल्कि स्थिति सापेक्ष मन स्थिति को व्यापक मानवीय चेतना म घुला देने का प्रयत्न भी किया गया है।

उपनगर की हैसियत म से ही यहा मानवीय स्थितिया की पीडा और करुणा उभरी है। जसवत भगवू अमरू आदि पात्रो और उनस सबद्ध प्रसगा की नियोजना इस कविता को महत्त्वपूण बना देती है। इनकी पीडा यातना का सदभ आत्मगत न होकर सामाजिक राजनीतिक ही है। एक ओर नेहरू युग का पागल है जो गठरी सा पडा है 'योजनाओ के धमाके से उसी का/सतुलन उडा है' दूसरी ओर बिना बाहो का लडका भगत् कुबडा है 'इस समय वह धुआधार भाषणा मे कोमा सा व्यथ है।' ऐसे मे कवि की चिंता है 'वस्तुओ का अस्तित्व आपस मे टकरा कर आज/नहीं पैदा करता कोई तीसरा अस्तित्व । कवि क्रम क्रम म सघपशील मानसिकता को अर्जित करता गया है। कविता की अन्तिम पक्तिया है मेन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बडबडाता है/उपस्थितियो से लेकर उपदशाओ म फैले तत्र मे झूलते वतमान/विकृत घुलते हुए/फिर अपनी भीगी कमीज को निचोड कर/फटकारता हुआ/प्राय चीखते हुए कहता है/कहा हो यार/उबकाई आ रही है/मूत्र/जल्दी करो, दश्य बदलो।'

इस कविता मे नाटकीय क्रियाओ और व्यापारा का कौशलपूण ढग से प्रयोग हुआ है और इनके माध्यम से वैचारिक प्रतिफलन सभव हो सका है। एक ही व्यक्ति है—मुलम्मा परतो म ढका हुआ जिसे आतरिक एकालाप की पद्धति से यहा पकडा की कोशिश की गई है। इस नाटकीय विधान के कारण काव्यगत प्रतिक्रियाए भावुक, रूढ और सुनिश्चित होने से बच गई हैं।

---

1 नवलकिशोर विन्दि (अक 3) पृ० 11

अमृता भारती की लम्बी कविता—'आज या कल या सौ बरस बाद' में वैयक्तिक और सामाजिक राजनीतिक संदर्भों का अंतर्गुम्फन और टकरावपूर्ण विधान हुआ है। इस कविता में संघर्ष और विद्रोह की वैयक्तिक परिकल्पना से जुड़ी सामाजिक परिवर्तन की वांछा और उसके अन्तर्विरोध प्रकट हुए हैं। स्थितियों के जो विवरण कवयित्री ने यहाँ दिए हैं, वे बाह्य संसार को ही नहीं, एक जटिल और उलझे हुए अंतरंग संसार को भी उद्घाटित करते हैं और उन दोनों संसारों में तालमेल स्थापित करने का भी प्रयत्न करते हैं। ये विवरण तनाव की उत्कटता से विश्रान्ति दिलाकर काव्यगत तनाव को सघन और संतुलित भी करते हैं।

इस कविता में वैयक्तिक प्रसंगों से कवयित्री मन पर छायी हुई करुणा व्यापक मानवीय चेतना के साथ जुड़ गयी है 'पत्थर की तरह बंधी हुई करुणा,' कवयित्री जानती है कि बहुत बड़ा बोझ है पर उसे यह भी एहसास है कि यह बोझ 'तब तक मेरे कन्धे तोड़ता रहेगा/जब तक/मिट्टी में धंस मेरे पैर/पृथ्वी के एक बड़े हिस्से के साथ ऊपर नहीं उठते।' ये पंक्तियाँ निरी आकांक्षा या बड़बोली अभिव्यक्ति मात्र नहीं हैं। ये कवयित्री के संवेदनात्मक ज्ञान (संकल्प भी) का प्रतिफलित करती हैं। यहाँ अनुभव का तात्कालिक और वैयक्तिक संदर्भ सामाजिक संदर्भ में घुल गया है ('जलना/और किसी को जलते हुए देखना/इन दोनों की आंच/पता नहीं कब बराबर हो गयी।' संवेदनात्मक स्तरों पर चलने वाला यह अनुचिन्तन मानवीय आशयों को गहराने वाला है।

लीलाधर जगूड़ी ने कई लम्बी कविताएँ लिखी हैं पर 'बलदेव खटिक' के अलावा अन्य कोई कविता विशेष प्रभावित नहीं कर पाती। उन कविताओं में कवि के लिए उत्तेजना और तनाव में तमीज करना मुश्किल हो गया है। युक्तियों भरे बड़बोले काव्य मुहावरे के कारण 'नाटक जारी है' एक असफल लम्बी कविता बन कर रह गयी है। पर 'बलदेव खटिक' एक विशिष्ट लम्बी कविता है। इसमें न किसी आख्यान का सहारा लिया गया है, न किसी फैंटेसी या बिम्ब का। इसके केन्द्र में एक ऐसा विचार है जो एक क्रूर समकालीन स्थिति को धीरे धीरे उघाड़ता है और उसे संघर्ष चेतना से सम्बद्ध कर देता है। सवाल स्थिति को शब्दबद्ध करने का उतना नहीं है जितना यह कि 'इस वक्त कहाँ से लाए जाएं ऐसे शब्द/जो हलफनामा बन सकें / जो तरफदारी कर सकें।' इसके लिए कवि ने रगतू और बलदेव खटिक जैसे ठोस और वास्तविक चरित्रों की सक्रिय सामाजिक सत्ताओं को उभारा है। दरअसल, ये चरित्र नहीं, प्रतिरोध के विचारों के साथ जुड़ी हुई विसंगतियों और त्रासद अनुभवों के बाद लिये जाने वाले निर्णयों के मूर्त रूप हैं। 'सवालों के जत्थों से भरा हुआ अकेला आदमी (रगतू) अगर एक मानवीय दुर्घटना है तो सिपाही बलदेव खटिक की

स्थिति भी कम विडम्बनापूर्ण नहीं है उसकी छाती पर गोलियों का पट्टा है। उसके हाथ में एक एक बंदूक है/उसे नहीं मालूम वह किसकी रक्षा कर रहा है।' वह उस पुलिस व्यवस्था का एक अदना सा सिपाही है जो भ्रष्टता को बढ़ावा देती हुई अन्यायी और आततायी के पक्ष में चली जाती है। उसे ऐसी ही व्यवस्था की भ्रष्ट, काईयाँ और मानव विरोधी कार्यवाहियों को पूरा करने में खपना पड़ता है। पर पुलिस का यही वफादार सिपाही एक दिन स्वयं का पुलिस के शिकंजे में असहाय सा पाता है। वह माँ को अस्पताल दाखिल नहीं करा पाता और उसकी माँ दम तोड़ देती है। वह वापस थाने आता है तो खुलेआम भ्रष्टाचार देखता है। वह अपनी आँखों के सामने न्याय को मरता हुआ देखता है और अपना संतुलन खोकर पागलों सा व्यवहार करने लग जाता है। तनाव और आक्रोश की तीव्रतम अवस्था में 'वह धड़ाधड़ फायर करता है/बंदूक के बट को थाने की दीवार में मार कर/तोड़ देता है'और सीढ़ियाँ उतर कर/सड़क पर मरे हुए कौआ को लाँघकर फरार हो जाता है। उसका इस तरह पागल हो जाना निस्सन्देह, परिवेश की क्रूरता, भ्रष्टता और ओछी राजनीति का परिणाम है। इस मन स्थिति में उसकी उत्तेजक और आक्रामक प्रतिक्रिया यह सूचित करती है कि उसे अपने दुश्मन की सही पहचान नहीं है। पर क्या यह कविता परिस्थिति के इस घिनौने और तरल सदर्भ के चित्रण तक सीमित रह गयी है? क्या विसंगति और विडंबना के संकेतों से आगे यह कविता कोई संकेत नहीं देती? क्या यह कविता मात्र यह सुनाती है कि अभावग्रस्त पीड़ित और शोषित लोगों की मुक्ति का रास्ता मौत और पागलपन में से गुजरता है? हमें लगता है कि कवि स्थिति की विद्रूपता को उघाड़ने वाले स्पष्ट संकेत देता है क्या कि वह जानता है कि विद्रोह की यह प्रक्रिया यहीं खत्म नहीं होगी—यह और भी तीव्रतर होगी—भ्रष्ट और आततायी व्यवस्था के प्रति और भी हिंसक क्योंकि 'देश में कुछ लोग/पेट से ही पागल होकर आ रहे हैं। उन्हें अपने दुश्मनकी पहचान है इसीलिए वे जब फायर करेंगे तो यह तय है कि/इस बार कौवे नहीं मरेंगे।'

मणि मधुकर ने अनेक लम्बी कविताएँ लिखी हैं पर अभी हाल ही में उनकी लम्बी कविता ।। का एक कविता संग्रह घास का घराना तथा अन्य कविताएं प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'खण्ड खण्ड पाखंड पर्व' नाम से उनकी एक लम्बी कविता पुस्तकाकार छप चुकी है। पर लम्बी कविता की अपेक्षाओं और प्रतिमानों पर 'घास का घराना जितनी सही और खरी उतरती है उतनी उनकी अन्य कोई कविता नहीं। इस कविता में परिदृश्य चित्रण में से ही आत्मविडंबना पूर्ण स्थितियों को उभरता हुआ दिखाया गया है। परिदृश्य को अंकित करने वाली दृश्यावली इस कविता को निश्चय ही एक ठोस सदर्भ प्रदान करती है पर इससे भी बढ़कर, ध्यान देने की बात यह है कि परिदृश्यगत ब्यौरे कवि के दृश्य निरूपण तक सीमित नहीं रह गए हैं वे पाठक को दृश्य के पार भी ले जाते हैं—दृश्य के रेशे

रेशे को उघाडते हुए, उन्हे मानवीय व्यवहारों के रूप में पेश कर देते हैं। परिदृश्य से लिपटी हुई स्थितियां अपनी अनुगूंजो सहित, कवि के दृष्टिकोण को प्रतिफलित करती हुई उपस्थित हो जाती है। परिदृश्य और कवि दृष्टि इस कविता में इस तरह अनुस्यूत हैं कि उन्हे अलग कर पाना कठिन है। सार्थक ब्यौरों के बल पर कवि एक जानी पहचानी परिस्थिति और देश काल को मूर्त करने का प्रयत्न करता है। हताशा से भरी, जिसगत और विडवनापूर्ण स्थितियों के यथार्थ को झेलते हुए भी कवि परास्त नहीं है। 'वह तलघर में नहीं, तमचे में घुसना पसन्द करता है ताकि बाजीगरों की बुनियाद को भकझोर सके'। निश्चय ही यह विद्रोही भाव का कायम रखने की आकाक्षा है। यही कविता का माहौल है और यह माहौल ही इस कविता की केंद्रीय धुरी है। स्थितियां पात्र और उनकी टकराहट इसी माहौल में से उभरती है और यातना सदर्भों को अधिक तीव्र और सघन बनाती जाती है।

ब्यौरा और तनाव बिन्दुओ के इस सयोजन ने इस कविता को विशिष्ट बना दिया है। यातना के जिन विभिन्न सदर्भों का जिक्र कविता में हुआ हैं, वे सदर्भ केवल वैयक्तिक नहीं है। एक विशेष परिवेश मे जीते, मरते खपते जन समूह की यातना का बोध जगाते हैं जो कहीं स्थितियों के चित्राकन के स्तर पर उभरी है तो कहीं पात्रों के रूप में। राजस्थान के ठेठ रतीले वातावरण को वहा की सामाजिक विषमता, शोषण और अत्याचारों को, मनुष्य की दारुण, यातनापूर्ण स्थितियों को, वहा के लोगों की निरीह, असहाय और उत्पीडित मन स्थितियों के सदर्भ में रखकर यहा फैलाया और ताना गया है। रावतो का सुमरू है जिसके पास अपने जख्मो का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा नहीं है। सोटियों की मार से सूजी हुई उसकी कमर 'कभी फोडे की भांति टीसने लगती है/कभी मवाद में लिसलिसा हो उठती है।' सुमरू की तरह सरजू, नरसी आदि अनेक पात्र हैं जो शोषकों और पुलिस के अत्याचारों से पीडित, दबे घुटे, सहमे एक के बाद एक कविता में आते गये हैं 'वे जुझारू जन/जिन्दा है पर उनके भीतर मौत पसरी हुई है। वे जीवन में जुताई मे शामिल हैं इसलिए मौत का नहीं जानते।' यह विडम्बना ही है कि जिनके कधो पर जनतत्र टिका है वे 'कतई नहीं जानते कि वे क्या है और क्यो हैं/उन्हे अपनी हैसियत अपनी ताकत की/कोई परवाह नहीं न ही यह मलाल कि/मालो माल के बेगारी मे इस्तेमाल किये जा रहे हैं।'

कविता के अतिम अश मे कवि का स्वर उग्र और निर्णयात्मक हो गया है। ध्यान देने की बात है कि यह उग्रता और निर्णयात्मकता उत्तेजना या हडबडी का परिणाम नहीं है इनके पीछे वास्तविक स्थितियों की तल्ख और क्रूर सच्चाइयां हैं। स्वर की उग्रता और निर्णयात्मकता, चूकि, स्थितियों की विसगतियों और अन्तर्विरोधों को झलते हुए अर्जित की गई है इसीलिए खरी और विश्वसनीय लगती है 'अत मैं भूल नहीं पाता यह सब। रचना रचता ही रहती मुझे इस बदसलूकी

का बदला लेना है। एतराज के उच्चारण म एकाग्र होना है।' यह निणय वास्त विक स्थितियो की कवि की पहचान से विच्छिन्न नही है, बल्कि उसी से उत्प्रेरित है और सघष चेतना म फँसते जाने की गवाही देता है। वह जानता है कि शोषितो और पीडितो के 'पास खोने के लिए कुछ नही है। अपनी विवशता और उदासी के सिवा।' कवि को 'उनके दमखम और दु साहस पर भरोसा है।' उसे विश्वास है कि 'जिस दिन वे तय कर लेंगे कि 'अब और गलाजत नही बदबू के बफारा की ताजगी म तब्दील करने के लिए—पिल जायेंगे। स्थितिया के दमघोटू होने के बावजूद मनुष्य का और मानवीय सरोकार को खत्म होन से बचाने के लिए अन वरत विद्रोह और सघष ही एक मात्र विकल्प बचते हैं और इसम सन्देह नही कि मणि मधुकर ने इन्ह विश्वसनीय ढग से प्रस्तुत किया है।

लम्बी कविताओ के इस विकास क्रम म इस कविता के अनेक पहलू विविध रूप और स्तर उद्घाटित हुए हैं। इसके स्पष्ट तीन दौर लक्षित किए जा सकत है—छायावादी लम्बी कविताए नयी कविता आन्दोलन के दौरान रचित लम्बी कविताएँ और सन साठ के बाद की समकालीन लम्बी कविताए। पहले दौर म आख्यानक तत्व केन्द्र मे रहा है दूसरे दौर मे बिम्ब और तीसरे दौर म विचार। समकालीन लम्बी कविताओ म आख्यान अपने स्थूल रूप मे महत्त्व-हीन होता गया है, विचार और स्थिति केन्द्र म आ गयी हैं और आख्यानक तत्त्व वचारिक या फटेसीगत सत्ता मे विलीन होता गया है। इनमे ऐतिहासिक राजनीतिक प्रसगो-सदर्भों के सन्निधिकरण के द्वारा केंद्रीय विचार या स्थिति मे गर्भित सघष को तीव्रतर किया गया है जिससे लम्बी कविता के रचना विधान म वचारिक सक्रियता बढी है जिस से मानवीय विडम्बना और सघषशीलता से निष्पन्न तनाव के विविध रूप इधर की लम्बी कविताओ म अभिव्यक्त हो सके है। विचार और बिम्ब का समायोजन और सतुलन इन समकालीन लम्बी कविताओ के एक खास पहलू के रूप मे उभरा है।

—नरेन्द्र मोहन

असाध्य वीणा

'अज्ञेय' (स० ही० वात्स्यायन)

जन्म सन 1911, कसिया (उ० प्र०)

कृतिया

कविता सग्रह भग्नदूत (1933), चिन्ता (1942), इत्यलम (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनु रौंदे हुए (1957), अरी ओ करुणा प्रभामय (1959), आगन के पार द्वार (1961), क्योकि मैं उसे जानता हू (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), 'महा वृक्ष के नीचे' (1977)

उपन्यास शेखर एक जीवनी—प्रथम भाग (1940 41), द्वितीय भाग (1944), नदी के द्वीप (1951), अपने अपने अजनबी (1961)

कहानी सग्रह विपथगा (1937) परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948) जयदोल (1951), अमर वल्लरी (1954), ये तेरे प्रतिरूप (1961)

आलोचना त्रिशकु (1945), आत्मनेपद (1960)

यात्रावृत्त अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूद सहसा उछली (1960)

सम्प्रति 'नया प्रतीक' मासिक का सपादन।

पता 110, गोल्फ लिंक, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003

प्रस्तुत कविता 'असाध्य वीणा' (1961) कवि के कविता सग्रह 'आंगन के पार द्वार' मे सकलित है।

[सघन निविड मे वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी तरु को
कौन प्रियवर है कि दमकर
इस अभिमन्त्रित कारूवाद्य के सम्मुख आवे
कौन बजावे
वह वीणा जो स्वय एक जीवन भर की साधना रही
भूल गया था केशकम्बली राज सभा को
कवल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन मे डूब गया था]

असाध्य वीणा

आ गये प्रियंवद! केशकम्बली! गुफा गेह!
राजा ने आसन दिया। कहा
"कृतकृत्य हुआ मैं तात! पधारे आप
भरोसा है अब मुझको
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी।"

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े। लाये असाध्य वीणा
साधक के आगे रख उसको, हट गये।
सभा की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं
प्रियंवद के चेहरे पर।

"यह वीणा उत्तराखण्ड के गिरि प्रान्तर से
— घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी—
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी तरु से इसे गढ़ा था—
उसके कानों में हिम शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कंधों पर बादल सोते थे,

उसकी वरि गुण्डा सी डालें
हिम वर्षा से पूर वन यूथा का कर लेती थी परित्राण,
कोटर म भालू बसत थे
केहरि उसके वल्कल से कधे खुजलाने आते थे।
और—सुना है— जड उसकी जा पहुची थी पाताल लोक,
उसकी ग ध प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।

उसी किरीटी तरु से वज्रकीर्ति न
सारा जीवन इस गढा
हठ साधना यही थी उस साधक की —
वीणा पूरी हुई साथ साधना साथ ही जीवन-लीला।'
राजा रुके सास लम्बी लकर फिर बोले
मेरे हार गय सब जान माने कलावन्त
सबकी विद्या हो गयी अकारथ दप चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इस न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ तप वज्रकीर्ति का व्यथ नही था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा स्वर सिद्ध गोद में लेगा।
तात ! प्रियवद ! लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी भरी सभा यह
सब उदग्र पयुत्सुक,
जन मात्र प्रतीक्षमाण !"

केशकम्बली गुफा गेह ने खोला कम्बल।
धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख पलक मूदकर, प्राणखींच,
करके प्रणाम,
अस्पश छुअन से छुए तार।
धीरे बोला 'राजन ! पर मैं तो
कलावन्त हू नही शिष्य साधक हू —
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।

वज्रकीर्ति!
प्राचीन किरीटी-तरु!
अभिमन्त्रित वीणा!
ध्यान मात्र इनका तो गदगद विह्वल कर देने वाला है।"

चुप हो गया प्रियंवद।
सभा भी मौन हो रही।
वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया।

धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।
सभा चकित थी—अरे, प्रियंवद क्या सोता है?
केशकम्बली अथवा होकर पराभूत
झुक गया वाद्य पर?
वीणा सचमुच क्या है असाध्य?

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा—
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी तरु को।
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही?
भूल गया था केशकम्बली राज सभा को
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी-तरु
जिसकी जड़ वासुकी के फन पर थी आधारित,
जिसके कंधों पर बादल सोते थे
और कान में जिसके हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरु को करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।

"ओ विशाल तरु !
शत सहस्र पल्लवन पतझरों ने जिसका नित रूप सवारा
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथक मगल गान सुनाये,
साझ सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग कुल की मोद भरी क्रीडा —काकलि
डाली डाली को कपा गयी—
ओ दीर्घकाय !
ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज
तात, सखा, गुरु आश्रय,
त्राता महच्छाय
ओ व्याकुल मुखरित वन ध्वनियो के
वृन्दगान के मूर्त्त रूप
मैं तुझे सुनू
देखू ध्याऊ
अनिमेष स्तब्ध, सयत, सयुत, निर्वाक
कहा साहस पाऊ
छू सकू तुझे
तेरी काया को छेद बाधकर रची गयी वीणा को
किस स्पर्द्धा से
हाथ करे आघात
छीनने को तारो से
एक चोट मे वह सचित सगीत जिसे रचने मे
स्वय न जाने कितनो के स्पदित प्राण रच गये !

"नहीं नहीं ! वीणा यह मेरी गोद रखी है रहे
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोद बैठा मोद भरा बालक हू,
ओ तरु तात ! सभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक मे डूब जाय
मैं सुनू

गुनूं
विस्मय से भर आकूं
तेरे अनुभव का एक-एक अंत:स्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूं मैं तन्मय—
गा तू
तेरी लय पर मेरी सांसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

"गा तू!
यह वीणा रखी है: तेरा अंग अपंग!
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म भरित,
रस विद्,
तू गा
मेरे अंधियारे अन्तस् में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का—
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा!

"हां, मुझे स्मरण है
बदली—कौंध—पत्तियों पर वर्षा बूंदों की पटपट।
घनी रात में महुए का चुप चाप टपकना।
चौंके खग शावक की चिहुक।
शिलाओं को दुलराते वन झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल निनाद।
कुहरे में छनकर आती
पर्वती गांव के उत्सव-ढोलक की थाप।
गड़रिये की अनमनी बांसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुंघनी की आतुर फुरकन।
ओस बूंद की ढरकन—इतनी कोमल, तरल कि झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गयी।
भरे शरद के ताल-लहरियों की सरसर ध्वनि।
कूंजों का क्रेंकार। कांद लम्बी टिट्टिभ की।
पंख युक्त सायक-सी हंस बलाका।
चीड़ वनों में गंध-अंध उन्मद पतंग की जहां-तहां टकराहट

जल प्रपात का प्लुत एक स्वर।
झिल्ली दादुर, कोकिल चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की सांय सांय।

"हां, मुझे स्मरण है!
दूर पहाड़ों से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानो चिंघाड़ रहा हो यूथ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की।
रेतीली कगार का गिरना छप् छड़ाप।
झंझा की फुफकार तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूटकर गिरना।
ओले की कर्री चपत।
जमे पाले से तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घाम में धीरे धीरे रिसना।
हिम तुषार से फाड़ धरती के घावों को सहलाते चुप चाप।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूंज—
कांपती मन्द्र गूंज—अनुगूंज—सांस खोयी सी, धीरे धीरे नीरव।

'मुझे स्मरण है
हरी तलहटी में छोटे पेड़ों की ओट ताल पर
बंधे समय वन-पशुओं की नानाविध आतुर-तृप्त पुकारें
गर्जन, घुघुर, चीख भूख हुक्का चिचियाहट।
कमल कुमुद पत्रों पर चोर पैर द्रुत धावित
जल पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलांगों की।
पन्थी के पाड़े की टाप अधीर।
अचंचल धीर थाप भैंसों के भारी खुर की।

मुझे स्मरण है
उधर क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूंद को
उस क्षण की सहमी चांदी की सिहरन।

और दुपहरी म जब
घास फूल अनदेखे खिल जाते है
मौमाखियाँ असख्य झूमती करती हैं गुजार—
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव।
और साझ को
जब तारा की तरल कपकपी
स्पशहीन झरती है—
माना नभ म तरल-नयन ठिठकी
नि सख्य सवत्सा युवती माताआ के आशीवाद —
उस सन्धि निमिष की पुलकन लीयमान।

"मुझे स्मरण है
और चित्र प्रत्यक
स्तब्ध विजडित करता है मुझको।
सुनता हू मैं
पर हर स्वर कम्पन लेता है मुझको मुझस सोख—
वायु सा नाद-भरा मैं उड जाता हू।
मुझे स्मरण है—
पर मुझको मैं भूल गया हू
सुनता हू मैं—
पर मैं मुझसे पर, शब्द म लीयमान।

'मैं नही, नही! मैं कही नही!
ओ रे तरु! ओ वन!
ओ स्वर सभार!
नाद मय ससृति!
ओ रस प्लावन!
मुझे क्षमा कर—भूल अकिचनता को मेरी—
मुझे ओट दे—ढक ले—छा ले
ओ शरण्य!
मेरे गूगेपन को तेरे सोये स्वर सागर का ज्वार डुबा ले।
आ, मुझे भुला,
तू उतर बीन के तारो मे
अपने से गा—

अपने को गा
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बांध
अपने छायातप, वृष्टि पवन, पल्लव कुसुमों की लय पर
अपने जीवन संचय को कर छन्दयुक्त !
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे !
तू गा, तू गा—
तू सन्निधि पा—तू खो
तू आ—तू हो—तू गा ! तू गा !

राजा जागे।
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था—
कांपी थी उंगलियां।
अलस अंगड़ाई लेकर मानो जाग उठी थी वीणा
किलक उठे थे स्वर शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे धीरे धीरे
डाल रहा था जाल हेम-तारों का।

सहसा वीणा झनझना उठी—
संगीतकार की आंखों में ठंडी पिघली ज्वाला सी झलक गयी—
रोमांच एक बिजली सा सबके तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोया है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग अलग एकाकी पार तिरे।
राजा ने अलग सुना
जयन्ती यश काय
वरमाला लिये
गाती थी मंगल गीत,

दुंदुभी दूर कहीं बजती थी
राज मुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का।
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

रानी ने अलग सुना
छटती बदली में एक कौंध कह गयी—
तुम्हारे ये मणि माणिक, कंठहार, पट वस्त्र,
मेखला किंकिणि—
सब अंधकार के कण हैं ये ! आलोक एक है
प्यार अनन्य ! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर, उसमें छिप कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।

सबने भी अलग अलग संगीत सुना।
इसको
वह कृपा वाक्य था प्रभुओं का—
उसको
आतंक मुक्ति का आश्वासन
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक—
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुदबुद।

किसी एक को नयी वधू की सहमी सी पायल ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल फँसी मछली की तड़पन—
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल, ग्राहकों की आस्पर्द्धा भरी बोलियाँ,
चौथे को मन्दिर की ताल युक्त घंटा ध्वनि।

और पाचवे को लोह पर सधे हथौडे की सम चोट
अछोरठे को लगर पर कसमसा रही नौका पर लहरा की अविराम थपक ।
बटिया पर चमरौधे की रुधी चाप सातवे क लिए—
और आठवे को कुलिया की कटी मेड से बहते जल की छुल छुन ।

इसे गमक नटिनी की एडी के घुघरू की—
उसे युद्ध का ढोल
इसे सझा-गोधूली की लघु टुन-टुन—
उस प्रलय का डमरु-नाद ।
इसको जीवन की पहली अगडाई
पर उसको महा'म्भ विकराल काल !
सब डूबे, तिरे, छिपे, जागे—
हो रहे वशवद, स्तब्ध
इयता सबकी अलग-अलग जागी,
सधीत हुई
पा गयी विलय ।
वीणा फिर मूक हो गयी ।

साधु ! साधु !"
राजा सिहासन से उतरे—
रानी न अर्पित की सतलडी माल,
जनता विह्वल कह उठी ' धन्य !
हे स्वरजित ! धन्य ! धन्य !"

सगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक—माना
गोदी म सोये शिशु को पालने डाल कर मुग्धा मा
हट जाय, पीठ से दुलराती—
उठ खडा हुआ ।
बढते राजा का हाथ उठा करता आवजन,
बोला
'श्रेय नही कुछ मेरा
म तो डूब गया था स्वय शून्य म—
वीणा के माध्यम से अपने को मन

सब कुछ को सौंप दिया था—
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी—
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।"

नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली। लेकर कम्बल गेह गुफा को चला गया।
उठ गयी सभा। सब अपने अपने काम लगे।
युग पलट गया।

प्रिय पाठक! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई।

अंधेरे मे

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

जन्म सन 1917, शिवपुरी (ग्वालियर) मृत्यु सन् 1964

कृतिया

कविता सग्रह	चाद का मुह टेढ़ा है।
उपन्यास	विपात्र
कहानी-सग्रह	काठ का सपना, सतह से उठता आदमी
आलोचना	कामायनी एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता और आत्म सघर्ष, नयी कविता का सौंदर्य शास्त्र

प्रस्तुत कविता 'अंधेरे मे' (1964) मुक्तिबोध के कविता-सग्रह 'चाद का मुह टेढ़ा है,' मे सकलित है।

[अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होगे ।
तोडने होगे ही मठ और गढ सब ।
पहुचना होगा दुगम पहाडो के उस पार
तब कही देखने मिलेगी बाँहे
जिसमे कि प्रतिफल कापता रहता
अरूण कमल एक]

अधेरे मे

जिदगी म
कमरो म अधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार,
आवाज पैरो की देती है सुनाई
बार-बार बार बार,
वह नही दीखता नही ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलस्मी खोह म गिरफ्तार कोई एक,
भीत पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अधकार ध्वनि-सा
    अस्तित्व जनाता
    अनिवार कोई एक,
और मेरे हृदय की धक धक
पूछती है—वह कौन
सुनाई जो देता, पर नही देता दिखाई !
इतने म अकस्मात गिरते है भीत से
फूले हुए पलिस्तर
गिरती है चूने भरी रेत
खिसकती है पपडिया इस तरह—
खुद-ब खुद
कोई बडा चेहरा बन जाता है

स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु,
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति ।
कौन वह दिखाई जो देता, पर
नहीं जाना जाता है !!
कौन मनु ?

बाहर शहर के, पहाड़ी के उस पार तालाब
अँधेरा सब ओर
निस्तब्ध जल,
पर, भीतर से उभरती है सहसा
सलिल के तम-श्याम शीशे में कोई श्वेत आकृति
कुहरीला कोई बड़ा चेहरा फैल जाता है
और मुसकाता है,
पहचान बताता है,
किन्तु, मैं हतप्रभ,
नहीं वह समझ में आता ।

अरे ! अरे !!
तालाब के आस-पास अँधेरे में वन-वृक्ष
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे अचानक
वृक्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ
शाखाएँ, डालियाँ झूमकर झपटकर
चीख, एक दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात्—
वृक्षों के अँधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलस्मी खोह का शिला-द्वार
खुलता है धड़ से

घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी
अन्तराल-विवर के तम में
लाल-लाल कुहरा,

कुहरे मे, सामने, रक्तालोक स्नात पुरुष एक,
रहस्य साक्षात !!

तेजो प्रभावमय उसका ललाट देख
मेरे अग अग म अजीब एक थरथर।
गौरवण, दीप्त दृग, सौम्य मुख
सम्भावित स्नेह सा प्रिय-रूप देखकर
विलक्षण शका,
भव्य आजानुभुज देखते ही साक्षात
गहन एक सन्देह।

वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज-सम्भावनाओ, निहित प्रभावो प्रतिमाओ की,
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय मे रिस रहे ज्ञान का तनाव वह
आत्मा की प्रतिमा।
प्रश्न थे गम्भीर, शायद खतरनाक भी
इसलिए बाहर के गुजान
जगलो से आती हुई हवा ने
फूक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी—
कि मुझको यो अधेरे म पकडकर
मौत की सजा दी !

किसी काले डैश की घनी काली पट्टी ही
आखो मे बध गयी,
किसी खडी पाई की सूली पर मैं टाग दिया गया,
किसी शून्य बिन्दु के अधियारे खड्डे म
गिरा दिया गया मैं
अचेतन स्थिति म !
[2]
सूनापन सिहरा,
अधेरे म ध्वनियो के बुलबुले उभरे,

शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,
मेरे ही उर पर, धसती हुई सिर
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
मीठी है दु सह !!
अरे, हा, साकल ही रह रह
बजती है द्वार पर।
कोई मेरी बात मुझे बताने के लिये ही
बुलाता है - बुलाता है
हृदय को सहला मानो किसी जटिल
प्रसग म सहसा होठो पर
हाठ रख कोई सच-सच बात
सीधे सीधे कहने को तडप जाय और फिर
वही बात सुनकर धस जाय मरा जी—
इस तरह, साकल ही रह रह बजती है द्वार पर
आधी रात इतन अधेरे मे कौन आया मिलने ?
विमन प्रतीक्षातुर कुहरे म घिरा हुआ
द्युतिमय मुख—वह प्रेम भरा चेहरा—
भोला भाला भाव—
पहचानता हूँ बाहर जो खडा है!!
यह वही व्यक्ति है जी हा!
जो मुझे तिलस्मी खोह म दिखा था।
अवसर अनवसर
प्रकट जो होता रहता
मेरी सुविधाओ का न तनिक खयाल कर।
चाहे जहा, चाहे जिस समय उपस्थित,
चाहे जिस रूप मे
चाहे जिन प्रतीको म प्रस्तुत,
इशारे से बताता है, समझाता रहता
हृदय को देता है बिजली के झटके !!
अरे, उसके चेहरे पर खिलती हैं सुबह,
गालो पर चट्टानी चमक पठार की
आखो मे किरणीली शाति की लहरें,
उसे देख, प्यार उमडता है अनायास !
लगता है - दरवाजा खोलकर

बाहों में कस लूं
हृदय में रख लूं
घुल जाऊं, मिल जाऊं, लिपट कर उससे
परन्तु, भयानक खड्डे के अंधेरे में आहत
और क्षत विक्षत, मैं पड़ा हुआ हूं,
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकूं जरा भी
(यह भी तो सही है कि
कमजोरियों से ही लगाव है मुझको)
इसीलिए टालता हूं उस मेरे प्रिय को
कतराता रहता हूं,
डरता हूं उससे।
वह बिठा देता है तुंग शिखर के
खतरनाक, खुरदरे कगार-तट पर
शोचनीय स्थिति में ही छोड़ देता मुझको।
कहता है—"पार करो पर्वत संधि के गह्वर,
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुंचो"
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा
मुझे डर लगता है ऊंचाइयों से
बजने दो सांकल!!
उठने दो अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले,
वह जन वैसे ही
आप चला जायेगा आया था जैसा।
खड्डे के अंधेरे में मैं पड़ा रहूंगा
पीड़ाएं समेटे!!
क्या करूं, क्या नहीं करूं मुझे बताओ
इस तम शून्य में तैरती है जगत् समीक्षा
की हुई उसकी
(सह नहीं सकता)
विवेक विक्षोभ महान् उसका
तम अन्तराल में (सह नहीं सकता)
अंधियारे मुझमें द्युति-आकृति-सा
भविष्य का नक्शा दिया हुआ उसका
सह नहीं सकता!!

नहीं नहीं, उसको मैं छोड नही सकूगा,
सहना पडे—मुझे चाहे जो भले ही।

कमजोर घुटनो को बार बार मसल,
लडखडाता हुआ मैं
उठता हू दरवाजा खोलने
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पोछता हू हाथ से,
अधेरे के ओर छोर टटोल टटोलकर
बढता हू आगे,
परो म महसूस करता हू धरती का फैलाव,
हाथो मे महसूस करता हूँ दुनिया
मस्तक अनुभव करता है आकाश
दिल म तडपता है अधेरे का अदाज,
आखें ये तथ्य को सूघती सी लगती,
केवल शक्ति है स्पश की गहरी।
आत्मा मे, भीषण
सत चित वदना जल उठी, दहकी।
विचार हो गये विचरण सहचर।
बढता हूँ आगे
चलता हू सभल सभल कर
द्वार टटोलता,
जग खायी जमी हुई जबरन्
सिटकनी हिलाकर
जोर लगा, दरवाजा खोलता
झाँकता हू बाहर

सूनी है राह, अजीब है फैलाव,
सर्द अधेरा।
ढीली आखो से देखते हैं विश्व
उदास तारे।
हर बार सोच और हर बार अफसोस
हर बार फिक्र
के कारण बढे हुए दद का मानो कि दूर वहा दूर वहां

अधियारा पीपल देता है पहरा।
हवाओ की निसग लहरो मे कापती
कुत्तो की दूर-दूर अलग-अलग आवा ,
टकराती रहती सियारो की ध्वनि से।
कापती है दूरिया, गूजते हैं फासले
(बाहर कोई नही, कोई नही बाहर)

इतने म अधियारे सूने म कोई चीख गया है
रात का पक्षी
कहता है—
"वह चला गया है,
वह नही आयेगा, आयेगा ही नही
अब तेरे द्वार पर।
वह निकल गया है गाव म शहर म।
उसको तू खोज अब
उसका तू शोध कर!
वह तेरी पूणतम परम अभिव्यक्ति,
उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक)
वह तेरी गुरु है
गुरु है "
[3]
समझ न पाया कि चल रहा स्वप्न या
जाग्रति शुरू है।
दिया जल रहा है,
पीता-लोक-प्रसार मे काल गल रहा है,
आस पास फैली हुई जग-आकृतिया
लगती हैं छपी हुई जड चित्रकृतियो सी
अलग व दूर-दूर
निर्जीव!!
यह सिविल लाइन्स है। मैं अपने कमरे म
यहा पडा हुआ हू।
आखें खुली हुई हैं,
पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा
उदास इकहरा,

स्लेट पट्टी पर खींची गयी तसवीर
भूत जैसी आकृति—
क्या वह मैं हूं ?
मैं हूं ?

रात के दो हैं
दूर दूर जंगल में सियारों का हो हो,
पास पास आती हुई घहराती गूंजती
किसी रेलगाडी के पहियों की आवाज !!
किसी अनपेक्षित
असम्भव घटना का भयावह सन्देह,
अचेतन प्रतीक्षा,
कहीं कोई रेल एक्सीडेन्ट न हो जाय।
चिन्ता के गणित अंक
आसमानी स्लेट पट्टी पर चमकते
खिडकी से दीखते।

हाय ! हाय ! तॉल्स्तॉय
कैसे मुझे दीख गये
सितारों के बीच बीच
घूमते व रुकते
पृथ्वी को देखते।

शायद तॉल्स्तॉय नुमा
कोई वह आदमी
और है
मेरे किसी भीतरी धागे का आखिरी छोर वह
अनलिखे मेरे उपन्यास का
केन्द्रीय संवेदन
दबी हाय हाय नुमा,
शायद, तॉल्स्तॉय-नुमा।

प्रोसेशन ?
निस्तब्ध नगर के मध्य-रात्रि-अंधेरे में सुनसान

किसी दूर बैण्ड की दबी हुई क्रमागत तान धुन,
मन्द-तार उच्च निम्न स्वर-स्वप्न,
उदाम उदास ध्वनि-तरगे है गम्भीर,
दीघ लहरिया ! !
गैलरी म जाता हू, देखता हू रास्ता
वह कोलतार पथ अथवा
मरी हुई खिची हुई कोई काली जिह्वा
बिजली के द्यु तिमान् दिये या
मरे हुये दातो का चमकदार नमूना ! !

किन्तु दूर सडक के उस छोर
शीत भरे थर्राते तारो के अँधियाले तल म
नील तेज उद्भास
पास पास पास पास
आ रहा इस ओर !
दबी हुई गम्भीर स्वर स्वप्न तरगें,
शत ध्वनि सगम सगीत
उदास तान धुन
समीप आ रहा ! !

और, अब
गैस लाइट पाता की बिन्दुए छिटकी,
बीचो बीच उनके
सावले जुलूस सा क्या कुछ दीखता ! !
गस लाइट निलाई मे रगे हुए अपार्थिव चेहरे,
बैण्ड दल,
उनके पीछे काले-काले बलवान घोडो का जत्था
दीखता,
घना व डरावना अवचेतन ही
जुलूस म चलता ।
क्या शोभा-यात्रा
किसी मृत्यु दल की ?

अजीब ! !

दोनों ओर, नीली गैस लाइट पांत
रही जल, रही जल !
नींद में खोये हुए शहर की गहन अवचेतना में
हलचल, पाताली तल में
चमकदार सांपों की उड़नी हुई लगातार
लकीरों की वारदात !!
सब सोये हुये हैं।
लेकिन, मैं जाग रहा, देख रहा
रोमांचकारी यह जादुई करामात !!

विचित्र प्रोसेशन
गम्भीर क्वीक मार्च
कलाबत्तू वाला काला जरीदार ड्रेस पहने
चमकदार बैण्ड दल—
अस्थि रूप, यकृत स्वरूप उदर-आकृति
आतों के जालों से बाजे वे दमकते हैं भयकर
गम्भीर गीत स्वप्न तरगें।
उभारते रहते,
ध्वनियों के आवर्त मँडराते पथ पर।
बण्ड के लोगों के चेहरे
मिलते हैं मेरे देखे हुओं से
लगता है उनमें कई प्रतिष्ठित पत्रकार
इसी नगर के !!
बड़े-बड़े नाम अरे कैसे शामिल हो गये इस बैण्ड दल में !
उनके पीछे चल रहा
सगीन नोकों का चमकता जगल
चल रही पदचाप, ताल-बद्ध दीर्घ पांत
टैंक दल, मोर्टार, ऑर्टिलरी, सन्नद्ध,
धीरे धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना
सैनिक के पथराये चेहरे
चिढ़े हुये, झुलसे हुये, बिगड़े हुये गहरे !
शायद, मैंने उन्हें पहले भी तो कहीं देखा था।
शायद उनमें मेरे कई परिचित !!
उनके पीछे यह क्या !!

कवेलरी !!
वाते काले घोडा पर खाकी मिलिट्री ड्रेस,
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी गेरुआ
आधा भाग कोलतारी भैरव,
आबदार !!
कधे से कमर तक कारतूसी बेल्ट है तिरछा।
कमर मे, चमडे के कवर म पिस्तौल,
रोष भरी एकाग्र दृष्टि मे धार है,
कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मॉशल
कई और सेनापति सेनाध्यक्ष
चेहरे व मेरे जाने बुझे से लगते,
उनके चित्र समाचारपत्रो म छपे थे,
उनके लेख देखे थे,
यहा तक कि कविताएँ पढी थी
भई वाह !
उनम कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक जगमगात कवि गण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहा तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमा जी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय, हाय !!
यहा ये दीखते है भूत पिशाच काय।
भीतर का राक्षसी स्वाथ अब
साफ उभर आया है,
छिपे हुए उद्देश्य
यहाँ निखर आये है
यह शोभा यात्रा है किसी मत दल की।

विचारा की फिरकी सिर मे घूमती है

इतने मे प्रोसेशन म से कुछ मेरी ओर
आँखें उठी मरी ओर भर,
हृदय मे मानो कि सगीन नोके ही घुस पडी बबर,
सडक पर उठ खडा हो गया कोई शोर—

"मारो गोली, दागो स्साले को एकदम
दुनिया की नजरों से हटकर
छिपे तरीके से
हम जा रहे थे कि
आधी रात—अँधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खत्म करो एकदम'
रास्ते पर भाग दौड़ धका पेल !!
गैलरी से भागा मैं पसीने से शराबोर !!

एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न भिन्न हो गये
सब चित्र
जागते में फिर से याद आने लगा वह स्वप्न
फिर स याद आन लगे अँधेरे में चेहरे
और मुझे प्रतीत हुआ भयानक
गहन मृतात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलता
परन्तु दिन में
बैठती हैं मिल कर करती हुई षड्यन्त्र
विभिन्न दफ्तरों कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में।

हाय हाय, मैंने उन्हें देख लिया नंगा
इसकी मुझे और सजा मिलेगी।

[4]
अकस्मात
चार का गजर कहीं खड़का,
मेरा दिल धड़का,
उदास मटमैला मन रूपी वल्मीक
चल विचल हुआ सहसा।
अगिनत काली काली हायफन डैशों की लीकें
बाहर निकल पड़ी अन्दर घुस पड़ी भयभीत,
सब ओर बिखराव।

मैं अपने कमरे में यहाँ लेटा हुआ हूँ।
काले-काले शहतीर छत के
हृदय दबोचते।
यद्यपि आंगन में नल जो मारता,
जल खखारता।
किन्तु न शरीर में बल है
अँधेरे में गल रहा दिल यह।

एकाएक मुझे भान होता है जग का,
अग्निधारी दुनिया का फैलाव,
फँसाव, घिराव, तनाव है सब ओर,
पत्ते न खड़के,
सेना ने घेर ली है सड़क।
बुद्धि की मेरी रग
गिनती है समय की धक्-धक्।
यह सब क्या है?
किसी जन-क्रान्ति के दमन निमित्त यह
मार्शल-ला है!!
दम छोड़ रहे हैं भाग गलियों में मरे पैर,
त्रास लगी हुई है,
ज़माने की जीभ निकल पड़ी है
कोई मेरा पीछा कर रहा है लगातार।
भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़,
चौराहा दूर से ही दीखता,
वहाँ शायद कोई सैनिक पहरेदार
नहीं होगा फिलहाल।
दीखता है सामने ही अन्धकार-स्तूप-सा
भयंकर बरगद—
सभी उपेक्षितों, समस्त वंचितों,
गरीबों का वही घर, वही छत,
उसके ही तल-खोह-अँधेरे में सो रहे
गृह-हीन कई प्राण।
अँधेरे में डूब गये

डालों में लटके जो मटमैले चिथड़े
किसी एक अति दीन
पागल के धन वे।
हाँ, वहाँ रहता है सिर फिरा एक जन।

किन्तु आज इस रात बात अजीब है।
वही, जो सिर फिरा पागल क़तई था
आज एकाएक वह
जागरित बुद्धि है, प्रज्वलत् धी है।
छोड़ सिर फिरा पन,
बहुत ऊँचे गले से,
गा रहा कोई पद कोई गान
आत्मोद्बोधमय!!
खूब भई, खूब भई,
जानता क्या वह भी कि
सैनिक प्रशासन है नगर में वाक़ई!
क्या उसकी बुद्धि भी जग गयी!

(करुण रसाल व हृदय के स्वर हैं
गद्यानुवाद यहाँ उनका दिया जा रहा)

ओ मेरे आदर्शवादी मन
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!

उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में क़नात से तन गये
किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर,

दुःखों के दाग़ों को तमग़ों-सा पहना
अपने ही ख़यालों में दिन रात रहना
असंग बुद्धि व अकेले में सहना
ज़िन्दगी निष्क्रिय बन गई तलघर

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया !!

बताओ तो किस किसके लिये तुम दौड गये,
करुणा के दृश्यों से हाय ! मुह मोड गये,
बन गये पत्थर,

बहुत बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत बहुत कम,
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम !!

लो हित पिता को घर से निकाल दिया,
जन मन-करुणा सी माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया
भावना के कर्तव्य—त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य—मार डाले !
बुद्धि का भाल ही फोड दिया,
तर्कों के हाथ उखाड दिये,
जम गये, जाम हुए, फस गये,
अपने ही कीचड में धस गये !!
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये।

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गये तुम "

मेरा सिर गरम है,
इसीलिये भरम है।
सपनों में चलता है आलोचन,
विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन।
निजत्व माफ है बेचैन,
क्या करूं ? किससे कहूं,

कहा जाऊ, दिल्ली या उज्जन ?
वैदिक ऋषि शुन शेप के
शाप भ्रष्ट पिता अजीगत समान ही
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ
वही उसे अकस्मात मिलता था रात म
पागल था दिन म
सिर फिरा विक्षिप्त मस्तिष्क ।

हाय, हाय !
उसने भी यह क्या गा दिया
यह उसने क्या नया ला दिया
प्रत्यक्ष,
म खडा हो गया
किसी छाया मूर्ति सा समक्ष स्वय के
होने लगी बहस और
लगने लगे परस्पर तमाचे ।
छि पागलपन है,
वृथा आलोचन है ।
गलियो म अधकार भयावह
माना मेरे कारण ही लग गया
मामल सा वह,
मानो मेरी निष्क्रिय सज्ञा ने सकट बुलाया,
मानो मेरे कारण ही दुघट
हुई यह घटना ।
चक्र से चक्र लगा हुआ है
जितना ही तीव्र है द्वद्व क्रियाओ घटनाओ का
बाहरी दुनिया म,
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया मे,
चलता है द्वद्व कि
फिक्र से फिक्र लगी हुई है ।
आज उस पागल न मेरी चन भुला दी,
मेरी नीद गवा दी ।

मैं इस बरगद के पास खडा हू ।

मेरा यह चेहरा।
घुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, सावले जल से,
झुके हुए गुमसुम टूट हुए घरा के
तिमिर अतल से
घुलता है मन यह।
रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु गम्भीर महान अस्तित्व
महकता है लगातार
मानो खडहर-प्रसारा म उद्यान
गुलाब-चमेली के, रात्रि तिमिर म,
महकते हा, महकते ही रहते हा हर पल।
किन्तु व उद्यान कहा है,
अधेरे मे पता नही चलता।
मात्र सुग ध है सब ओर
पर, उस महक लहर मे
कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता
छटपटा रही छटपटा रही है

[5]
एकाएक मुझे भान !!
पीछे से किसी अजनबी ने
कन्धे पर हाथ रखा।
चौंकता मैं भयानक
एकाएक थरथर रेंग गई सिर तक,
नही नही। ऊपर से गिरकर
कन्धे पर बैठ गया बरगद पात तक,
क्या वह सकेत, क्या वह इशारा ?
क्या वह चिटठी है किसी की ?
कौन-सा इगित ?

भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड !!
बन्दूक धाय धाय
मकानो के ऊपर प्रकाश-सा छा रहा गरुआ।

भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड
घूम गयी पृथ्वी, घूम गया आकाश,
और फिर, किसी एक मुदे हुए घर की
पत्थर सीढी दिख गई, उस पार
चुपचाप बैठ गया सिर पकड कर ।।
दिमाग म चक्कर,
चक्कर भवरें
भवरों के गाल गोल केन्द्र मे दीखा
स्वप्न सरीखा—

भूमि की सतहों के बहुत बहुत नीचे
अधियारी एकान्त
प्राकृत गुहा एक ।
विस्तृत खोह के सावले तल मे
तिमिर को भेद कर चमकते हैं पत्थर
मणि तेजस्क्रिय रेडियो ऐक्टिव रत्न भी बिखर
झरता है जिन पर प्रबल प्रपात एक ।
प्राकृत जल वह आवेग भरा है
द्युतिमान् मणियों की अग्नियों पर से
फिसल फिसल कर बहती लहरें,
लहरों के तल म से फूटती हैं किरनें
रत्नों की रगीन रूपों की आभा
फूट निकलती
खोह की बेडौल भीतें हैं झिलमिल ।।
पाता हूँ निज को खोह के भीतर,
विलुब्ध नेत्रों से देखता हूँ द्युतियाँ,
मणि तेजस्क्रिय हाथों म लेकर
दीप्ति म वलयित रत्न वे नहीं हैं
अनुभव, वेदना विवेक निष्कर्ष,
मेरे ही अपने यहाँ पडे हुए हैं
विचारों की रक्तिम अग्नि के मणि वे
प्राण-जल प्रपात म धुलते हैं प्रतिपल
अकेले म किरणों की गीली है हलचल

गीली है हलचल ।।

[6]

हाय, हाय ! मैंने उन्हें गुहा-वास दे दिया
लोक हित क्षेत्र से कर दिया वंचित
जनोपयोग से वर्जित किया और
निषिद्ध कर दिया
ोह मे डाल दिया ।।
खतरनाक थे,
बच्चे भीख मागते) खर
न समय है,
तना ही तै है ।
न बदलता है,
सान चौराहा सावला फैला,
व म वीरान गरुआ घण्टाघर,
र कत्थई बुजुर्ग गुम्बद,
ली हवाओ म काल टहलता है ।
मे पीले हैं चार घडी चेहरे,
नेट के काटो की चार अलग गतिया,
अलग कोण,
चार अलग सकेत
स मे गतिमान चार अलग मतियाँ)
भा पर बिजली की गरदन लटकी,
से जलते हुए बल्बो के आस पास
ज्वाला के पखो के कीडे
हैं गोल गोल
मचल कर।
घर तले ही
के टुकडे बीट व तिनके ।
विवर मे बठे हुए बूढे
भव पक्षी
तेज नजरो से देखते हैं सब ओर,
कि इरादे
क चमकते ।

सुनसान चौराहा,
बिखरी है गतिया, बिखरी है रफ्तार,
गश्त मे घूमती है कोई दुष्ट इच्छा।
भयानक सिपाही जाने किस थकी हुई झाक म
अधेरे मे सुलगाता सिगरेट अचानक
ताबे-से चेहरे की ऐंठ झलकती।
पथरीली झलक
दियासलाई की पल भर लौ मे
शाप सी लगती।
पर, उसके चहरे का रग बदलता है हर बार,
मानो अनपेक्षित कही न कुछ हो
वह ताक रहा है—
सगीन नोको पर टिका हुआ
सावला बन्दूक जत्था
गाल त्रिकोण एक बनाय खडा जो
चौक के बीच मे !!
एक ओर
टैंको का दस्ता भी खडे खडे ऊघता
परन्तु अडा है !!

भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड।
भागती है चप्पल, चटपट आवाज
चाटो सी पडती।
परा के नीचे की कीच उछलकर
चेहरे पर, छाती पर पडता है सहसा,
ग्लानि की मितली।
गलिया का गोल-गाल खोह-अधेरा
चेहरे पर आखा पर करता है हमला।
अजीब उमस-बास
गलिया का रुधा हुआ उच्छवास
भागता हू दम छोड
घूम गया कई मोड।

धुधले से आकार कही-कही दीखत,
भय के ? या घर के ? कह नही सकता
आता है अकस्मात् कालतार रास्ता
लम्बा व चौडा व स्याह व ठण्डा,
बेचैन आखे ये देखती है सब ओर।
कही कोई नही है,
नही कही कोई भी।
श्याम आकाश म, सवेत भापा सी तारो की आखें
चमचमा रही हैं।
मेरा दिल ढिबरी-सा टिमटिमा रहा है।
कोई मुझे खीचता है रास्ते के बीच ही।
जादू से बधा हुआ चल पडा उस ओर।
सपाट सून मे ऊची सी खडी जो
तिलक की पाषाण मूर्ति है नि सग
स्तब्ध जडीभूत
देखता हूँ उसको परन्तु ज्यो ही मैं पास पहुँचता
पाषाण-पीठिका हिलती सी लगती
अरे, अरे, यह क्या !!
कण-कण काप रहे जिनमे से झरते
नीले इलेक्ट्रान
सब ओर गिर रही चिनगियाँ नीली
मूर्ति के तन से झरते हैं अगार।
मुस्कान पत्थरी होठो पर कापी,
आखो मे बिजली के फूल सुलगते।

इतने मे यह क्या !!
भव्य ललाट की नासिका म से
बह रहा खून न जाने कब से
लाल-लाल गरमीला रक्त टपकता
(खून के धब्बो से भर अगरखा)
मानो कि अतिशय चिन्ता के कारण
मस्तक कोष ही फूट पडे सहसा
मस्तक रक्त ही बह उठा नासिका मे से।
हाय, हाय, पित पित ओ,

चिन्ता में इतने न उलझो
हम अभी जिन्दा हैं जिन्दा,
चिन्ता क्या है !!
मैं उस पाषाण मूर्ति के ठण्डे
पैरों को छाती से बरबस चिपका
रुआँसा-सा होता
देह में तन गए करुणा के काँटे
छाती पर, सिर पर, बाँहों पर मेरे
गिरती हैं नीली
बिजली की चिनगियाँ
रक्त टपकता है हृदय में मेरे
आत्मा में बहता-सा लगता
खून का तालाब।
इतने में छाती में भीतर ठक्-ठक्
सिर में है धड़-धड़ !! कट रही हड्डी !!
फिक्र जबरदस्त !!
विवेक चलाता तीखा-सा रन्दा
चल रहा बसूला
छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई
भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे भी अन्दर
हठ कोई बड़ा भारी उठ खड़ा हुआ है।
[illegible] आसमान [illegible]
[illegible]
बिजली की [illegible] धूप [illegible]।
[illegible]
[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible] आवाज
[illegible]
[illegible]
[illegible] है।
[illegible]
[illegible] —

सामन मेरे
सर्दी मे बोरे को ओढ कर
कोई एक अपन
हाथ पर समेटे
काप रहा, हिल रहा —वह मर जायगा।
इतन मे वह सिर खोलता है सहसा
बाल बिखरते,
दीखत हैं कान कि
फिर मह खोलता है, वह कुछ
बुदबुदा रहा है,
कि-तु, मैं सुनता ही नही हू।
ध्यान से देखता हू— वह काई परिचित
जिसे खूब देखा था, निरखा था कई बार
पर पाया नही था।
अरे हा, वह तो
विचार उठत ही दब गये,
सोचने का साहस सब चला गया है।
वह मुख—अरे, वह मुख, वे गाधी जी !!
इस तरह पगु !!
आश्चय !!
नही, नही वे जाच-पडताल
रूप बदलकर करते हैं चुपचाप।
सुरागरसी सी कुछ।

अधेरे की स्याही म डूबे हुए दव को सम्मुख पाकर
मैं अति दीन हो जाता हू पास कि
बिजली का झटका
कहता है—"भाग जा, हट जा
हम हैं गुजर गये जमान के चेहरे
आगे तू बढ जा।"
किंतु मैं देखा किया उस मुख को।
गम्भीर दृढता की सलवटें वसी ही,
शब्दो म गुरुता।

ये कह रहे हैं—
"दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दाना को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुरगा
यदि बाँग दे उठे जोरदार
बन जाये मसीहा"
ये कह रहे हैं—
मिट्टी के लोंदे में किरणीले कण कण
गुण हैं,
जनता के गुणों से ही सम्भव
भावी का उद्भव
गम्भीर शब्द वे और आगे बढ़ गये,
जाने क्या कह गये !!
मैं अति उद्विग्न !

एकाएक उठ पड़ा आत्मा का पिंजर
मूर्ति की ठठरी।
नाक पर चश्मा, हाथ में डण्डा,
कन्धे पर बोरा, बांह में बच्चा।
आश्चर्य !! अद्भुत ! यह शिशु कैसे !!
मुसकरा उठा द्युति पुरुष ! कहा तब —
'मेरे पास चुपचाप सोया हुआ यह था।
संभालना इसको, सुरक्षित रखना'

चला जा रहा हू
घुसता ही जाता हूँ फासलो की खोहो की तहा म।

सहसा रो उठा कन्धे पर वह शिशु
अरे, अरे, वह स्वर अतिशय परिचित !!
पहले भी कई बार कही तो भी सुना था,
उसमे तो स्फोटक क्षोभ का आवेगा,
गहरी है शिकायत
क्रोध भयकर।
मुझे डर यदि कोई वह स्वर सुन ले
हम दोना फिर कही नही रह सकेंगे
मैं पुचकारता हूँ, बहुत दुलारता,
समझाने के लिए तब गाता हूँ गाने,
अधभूली लोरी ही होठो से फूटती !
मैं चुप करने की जितनी भी करता हूँ कोशिश,
और और चीखता है क्रोध स लगातार !!
गरम गरम अश्रु टपकते है मुझ पर।

किन्तु, न जाने क्यो खुश बहुत हूँ।
जिसको न मैं इस जीवन म कर पाया,
वह कर रहा है।
मैं शिशु-पीठ को थपथपा रहा हू,
आत्मा है गीली।
पर आगे बढ रहे, मन आग जा रहा।

डूबता हूँ मैं किसी भीतरी सोच म—
हृदय के थाले म रक्त का तालाब,
रक्त मे डूबी हैं द्युतिमान मणिया,
रुधिर से फूट रही लाल-लाल किरणें,
अनुभव रक्त मे डूबे हैं सकल्प,
और य सकल्प
चलते हैं साथ साथ।
अधियारी गलिया म चला जा रहा हूँ।

इतने मे पाता हूँ अधेरे म सहसा
कन्धे पर कुछ नही !!
वह शिशु
चला गया जाने कहा,
और अब उसके ही स्थान पर
मात्र हैं सूरज मुखी फूल गुच्छे।
उन स्वण पुष्पा से प्रकाश विकीरण
कन्धो पर, सिर पर, गालो पर, तन पर
रास्ते पर, फैले हैं किरणो के कण-कण।
भई वाह, यह खब !!

इतने मे गली एक आ गयी और मैं
दरवाजा खुला हुआ देखता।
जीना है अधेरा।
कही कोई ढिबरी सी टिमटिमा रही है।
मैं चढ रहा हू
कन्धा पर फूलो के लम्बे व गुच्छे
क्या हुए, कहा गये ?
कन्धे क्या वजन से दुख रहे सहसा।
ओ हो,
ब दूक आ गयी
वाह वा !!
वजनदार रायफल
भई खूब !!
खुला हुआ कमरा है सावली हवा है,
झाकते है खिडकियो मे से दूर अधेरे म टके हुए सितारे
फली है वर्फीली सास सी वीरान,
तितर बितर सब फला है सामान।
बीच मे कोई जमीन पर पसरा,
फलाये बाह, ढह पडा आखिर।
मैं उस जन पर फैलाता टाच कि यह क्या—
खून भरे बाल मे उलझा है चेहरा,
भौंहो के बीच म गोली का सूराख
खून का परदा गालो पर फैला,

होठों पर सूखी है कत्थई धारा,
फूटा है चश्मा नाक है सीधी,
ओफ्फ़ो !! एकांत प्रिय यह मेरा
परिचित व्यक्ति है, वही, हा,
सचाई थी सिर्फ एक अहसास
वह कलाकार था
गलियों के अंधेरे का, हृदय म, भार था
पर, कार्य क्षमता से वचित व्यक्ति,
चलाता था अपना असग अस्तित्व ।
सुकुमार मानवीय हृदयों के अपने
शुचितर विश्व के मात्र थे सपन ।
स्वप्न व ज्ञान व जीवनानुभव जो—
हलचल करता था रह रह दिल म
किसी को भी दे नही पाया था वह तो ।
शून्य के जल म डूब गया नीरव
हो नहीं पाया उपयोग उसका ।
किन्तु, अचानक झोक म आ कर क्या कर गुजरा कि
स देहास्पद समझा गया और
मारा गया वह वधिको के हाथा ।
मुक्ति का इच्छुक तृषात अ तर
मुक्ति के यत्ना के साथ निर तर
सब का था प्यारा ।
अपने म द्युतिमान् ।
उनका या वध हुआ,
मर गया एक युग,
मर गया एक जीवनादश !!
इतने मे मुझको ही चिढाता है कोई ।
सवाल है – मैं क्या करता था अब तक,
भागता फिरता था सब ओर ।
(फिजूल है इस वक्त कोसना खुद को)
एकदम जरूरी— दोस्तों को खोजूं
पाऊं मैं नए नए सहचर
सकमक सत चित-वेदना भास्वर !!

जीने से उतरा,
एकाएक विद्रूप रूपों से घिर गया सहसा
परेड मशीन सी,
भयानक आकार घेरते हैं मुझको,
मैं आततायी-सत्ता के सम्मुख।

एकाएक हृदय धड़क कर रुक गया, क्या हुआ !!
भयानक सनसनी।
पकड़कर कॉलर गला दबाया गया।
चाँटे से कनपटी टूटी कि अचानक
त्वचा उखड़ गयी गाल की पूरी।
कान में भर गई
भयानक अनाहद नाद की भनभन
आँखों में तैरीं
रक्तिम तितलियाँ चिनगियाँ नीली।
सामने ऊगते डूबते धुंधले
कुहरिल वर्तुल
जिनका कि चक्रिल केन्द्र ही फैलता जाता
उस फैलाव में दीखते मुझको—
धँस रहे गिर रहे बड़े बड़े टावर
घुंघराला धुँआ गेरुआ ज्वाला।
हृदय में भगदड़—
सम्मुख दीखा
उजाड़ बंजर टीले पर सहसा
रो उठा कोई रो रहा कोई
भागता कोई सहायता देने।
अन्तस्तत्त्वों का पुनःप्रबन्ध और पुनर्व्यवस्था
पुनर्गठन-सा होता जा रहा।

दृश्य ही बदला चित्र बदल गया
जबरन् ले जाया गया मैं गहरे
अँधियारे कमरे के स्याह सिफ़र में।
टूटे से स्टूल में बिठाया गया हूँ।
शीश की हड्डी जा रही तोड़ी।

लोहे की कील पर पडे हथौडे
पड रहे लगातार।
शीश का मोटा अस्थि-कवच ही निकाल डाला।
देखा जा रहा—
मस्तक-यन्त्र मे कौन विचारो की कौन सी ऊर्जा,
कौन सी शिरा मे कौन सी धक् धक्,
कौन सी रग मे कौन सी फुरफुरी,
कहा है पश्यत कमरा जिसमे
तथ्यो के जीवन दृश्य उतरते,
कहा-कहा सच्चे सपनो के आशय
कहा कहा क्षोभक स्फोटक सामान !
भीतर कही पर गडे हुए गहर
तलघर अन्दर
छिपे हुए प्रिंटिंग प्रेस को खोजो।
जहा कि चुपचाप खयालो के परचे
छपते रहते हैं, बाटे जाते।
इस सस्था के सेक्रेट्री का खोज निकालो,
शायद, उसका ही नाम हो आस्था,
कहा है सरगना इस टुकडी का
कहा है आत्मा ?
(और, मैं सुनता हू चिढी हुई ऊची
खिझलायी आवाज)
स्क्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता,
क्रास एक्जामिन हिम थारोली !!

चाबुक चमकार
पीठ पर यद्यपि
उखडे चम की कत्थई रक्तिम रेखाएँ उभरी
पर, यह आत्मा कुशल बहुत है,
देह मे रेंग रही सवेदना की गरमीली कडुई धारा को गहरी
झनझन थरथर तारो की उसके,
समेट कर वह सब
वेदना विस्तार करके इकट्ठा
मेरा मन यह

जबरन उनकी छोटी सी कड्ढी
गठान बाँधता सख्त व मजबूत
मानो कि पत्थर।
जोर लगा कर,
उसी गठान को हथेलियो से
करता है चूर चूर,
धूल मे बिखरा देता है उसको।
मन यह हटता है दह की हद स
जाता है कही पर अलग जगत् म।
विचित्र क्षण है,
सिफ है जादू,
मात्र मैं बिजली
यद्यपि खोह मे खूटे बधा हू
दत्य है आस-पास
फिर भी बहुत दूर मीला के पार वहाँ
गिरता हूँ चुपचाप पत्र के रूप म
किसी एक जेब मे
वह जेब
किसी एक फटे हुए मन की।

समस्वर, समताल,
सहानुभूति की सनसनी कोमल।।
हम कहा नही है
सभी जगह हम।
निजता हमारी ?
भीतर भीतर बिजली के जीवित
तारा के जाले,
ज्वलन्त तारो की भीषण गुत्थी,
बाहर-बाहर धूल-सी भूरी
जमीन की पपडी
अग्नि को लेकर मस्तक हिमवत,
उग्र प्रभजन लेकर, उर यह
बिलकुल निश्चल।
भीषण शक्ति को धारण करके

आत्मा का पोशाक दीन व मैला।
विचित्र रूपो को धारण कर के
चलता है जीवन, लक्ष्यो के पथ पर।

[7]
रिहा!!
छोड दिया गया मैं,
कई छाया मुख अब करते हैं पीछा,
छाया कृतिया न छोडती है मुझको,
जहाँ जहा गया वहा
भौहा के नीचे के रहस्यमय छेद
मारते हैं सगीत—

दृष्टि की पत्थरी चमक है पनी।
मुझे अब खोजने होगे साथी—
काले गुलाब व स्याह सिवती,
स्याम चमेली,
सँवलाये कमल जो खोहा के जल म
भूमि के भीतर पाताल-तल मे
खिले हुए कब स भेजते है सकेत
सुझाव स देश भेजते रहते!!
इतने म सहसा दूर क्षितिज पर
दीखते हैं मुझको
बिजली की नगी लताओ स भर रहे
सफेद नीले मोतिया चम्पई फूल गुलाबी
उठते हैं वही पर हाथ अकस्मात्
अग्नि के फूला को समेटने लगते।
मैं उन्ह देखने लगता हूँ एकटक,
अचानक विचित्र स्फूर्ति से मैं भी
जमीन पर पडे हुए चमकीले पत्थर
लगातार चुनकर
बिजली के फूल बनाने की कोशिश
करता हू। रश्मि विकीरण—
मेरे भी प्रस्तर करते हैं प्रतिक्षण।

रेडियो ऐक्टिव रत्न हैं वे भी।
बिजली के फूलों की भांति ही
यत्न हैं वे भी,
किन्तु, असन्तोष मुझको है गहरा,
शब्दाभिव्यक्ति अभाव का संकेत।
काव्य-चमत्कार उतना ही रंगीन
परन्तु ठंडा।
मेरे भी फूल हैं तेजस्क्रिय, पर
अतिशय शीतल।
मुझको तो बेचैन बिजली की नीली
ज्वलन्त बांहों में बांहों का उलझा
करती है उतनी ही प्रदीप्त लीला
आकाश भर में साथ-साथ उसके घूमना है मुझको
मेरे पास न रंग है बिजली का गौर कि
भीमाकार हूँ मेघ मैं काला
परन्तु, मुझको है गम्भीर आवेश
अथाह प्रेरणा स्रोत का संयम।
अरे, इन रंगीन पत्थर फूलों से मेरा
काम नहीं चलेगा!!
क्या कहूँ,
मस्तक-कुण्ड में जलती
सत् चित्-वेदना सचाई व गलती—
मस्तक शिराओं में तनाव दिन रात।

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी बाँहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक
ले जाने उसको धँसना ही होगा
झील के हिम शीत सुनील जल में
चाँद उग आया है

गलिया की आकाशी लम्बी सी चीर मे
तिरछी है किरनो की मार
उस नीम पर
जिसके कि नीचे
मिट्टी के गोल चबूतरे पर, नीली
चादनी म कोई दिया सुनहला
जलता है मानो कि स्वप्न ही साक्षात
अदश्य साकार।
मकानो के बडे बडे खँडहर जिनके कि सूने
मटियाले भागो म खिलती ही रहती
महकती रातरानी फूल भरी जवानी म लज्जित
तारो की टपाती अच्छी न लगती।

भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड,
ध्वस्त दीवालो के उस पार कही पर
बहस गरम है
दिमाग म जान है, दिलो म दम है
सत्य से सत्ता के युद्ध को रग है,
पर, कमजोरियाँ सब मेरे सग है
पाता हूँ सहसा —
अँधेरे की सुरग गलिया म चुपचाप
चलते हैं लोग-बाग
दृढ पद गम्भीर,
बालक युवागण
मन्द गति नीरव
किसी निज भीतरी बात मे व्यस्त हैं,
कोई आग जल रही तो भी अन्त स्थ।

विचित्र अनुभव !!
जितना मैं लोगो की पाँतो को पार कर
बढ़ता हूँ आगे,
उतना ही पीछे मैं रहता हूँ अकेला,
पश्चात्-पद हूँ।

पर, एक रेला और
पीछे से चला और
अब मेरे साथ है।
आश्चर्य !! अद्‌भुत !!
लोगों की मुट्ठियाँ बँधी हैं।
अँगुली संधि से फूट रही किरन
लाल-लाल
यह क्या !!
मेरे ही विक्षोभ मणियों को लिए वे
मेरे ही विवेक रत्नों को ले कर,
बढ रहे लाग अँधेरे मे सोत्साह।
किन्तु मैं अकेला
बौद्धिक जुगाली मे अपने से दुकेला।

गलियों में अँधेरे मे मैं भाग रहा हू
इतने म चुपचाप कोई एक
दे जाता पर्चा,
कोई गुप्त शक्ति
हृदय म करने-सी लगती है चर्चा !!
मैं बहुत ध्यान से पढता हू उसको !
आश्चर्य !
उसम तो मेरे ही गुप्त विचार व
दबी हुई सवेदनाएँ व अनुभव
पीडाएँ जगमगा रही हैं।
यह सब क्या है !!
आसमान झाँकता है लकीरो के बीच बीच
वाक्यो की पाँतो मे आकाशगगा सी फैली
शब्दो के व्यूहो म ताराएँ चमकी
तारक-दलों म भी खिलता है आँगन
जिसम कि चम्पा के फूल चमकते
शब्दकोशो के कानो म गहरे तुलसी के श्यामल खिलते हैं
चेहरे !!
चमकता है आशय मनोज मुधा स
पारिजात-गुण महका।

पर्चा पढ़ते हुए उड़ता हूं हवा में
चक्रवात गतियों में घूमता हूँ नभ पर
ज़मीन पर एक साथ
सर्वत्र सचेत उपस्थित।
प्रत्येक स्थान पर लगा हूँ मैं काम में,
प्रत्येक चौराहे, दुराहे व राहों के मोड़ पर
सड़क पर खड़ा हूं,
मानता हूँ, मनाता हूँ, मनवाता अड़ा हूं !!

और तब दिक्काल दूरियाँ
अपने ही देश के नक्शे-सी टंगी हुई
रंगी हुई लगती !!
स्वप्नों की कोमल किरन कि मानो
घनीभूत सघनित द्युतिमान्
शिलाओं में परिणत
ये सत्र दृढ़ीभूत कर्म शिलाएं हैं
जिनसे कि स्वप्नों की मूर्ति बनेगी
सस्मित सुखकर
जिसकी कि किरनें
ब्रह्माण्ड भर में नाचेंगी सब कुछ !
सचमुच, मुझको तो जिन्दगी-सरहद
सूर्यों के प्रांगण पार भी जाती-सी दीखती !!
मैं परिणत हूँ,
कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूं
वर्तमान समाज में चल नहीं सकता।
पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को,
जन को।
[8]
एकाएक हृदय धड़क कर रुक गया, क्या हुआ !!
नगर से भयानक धुआँ उठ रहा है,
कहीं आग लग गयी कहीं गोली चल गयी।
सड़कों पर मरा हुआ फैला है सुनसान,

हवाओ म अदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेग।
साथ साथ घूमते है, साथ साथ रहते हैं,
साथ साथ सोते हैं, खाते हैं, पीते है
जन मन उद्देश्य ! !
पथरीले चेहरो के खाकी ये कसे ड्रेस
घूमते हैं यन्त्रवत्,
वे पहचाने मे लगते हैं वाक्ड
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ! !

सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक
चिन्तक, शिल्पकार, नतक चुप हं
उनके खयाल स यह सब गप है
मात्र किवदन्ती।
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल बद्ध ये सब लोग
नपुसक भोग शिरा जाला म उलने।
प्रश्न की उथली सी पहचान
राह से अनजान
वाक् रदन्ती।
चढ गया उर पर कही कोई निदयी
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी।

भव्याकार भवनो मे विवरा म छिप गये
समाचारपत्रो मे पतियो के मुग्ध स्थूल।
गढे जाल सवाद,
गढी जाती समीक्षा,
गढ़ी जाती टिप्पणी जन मन-उर शूर।
वौद्धिक वग है क्रीतन्दास,
चिरायें वे विचारा का उद्भास।
बडे-बडे चेहरो पर स्याहियाँ पुत गयी।
नपुसक श्रद्धा
सडक के नीचे की गटर म छिप गयी,
कही आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

धुए के जहरीले मेघो के नीचे ही हर बार
द्रुत निज विश्लेष गतिया,
एक स्प्लिट सेकेण्ड मे शत साक्षात्कार।
टूटते हैं धोखो से भरे हुए सपन।
रक्त मे बहती हैं शान की किरनें
विश्व की मूर्ति मे आत्मा ही ढल गयी,
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी।

राह के पत्थर-ढोका के अन्दर
पहाडा के झरने
तडपने लग गये।
मिट्टी के लोदे के भीतर
भक्ति की अग्नि का उद्रेक
भडकने लग गया।
धूल के कण म
अनहद नाद का कम्पन
खतरनाक !!
मकानो के छत से
गाडर कूद पडे धम से
घूम उठे खम्भे
भयानक वेग से चल पडे हवा मे।
दादा का सोटा भी करता है दांव-पेच
नाचता है हवा म
गगन मे नाच रही कक्का की लाठी।
यहा तक कि बच्चे की पेंमें भी उडती,
तेजी से लहराती घूमती है हवा मे
सलेट-पट्टी।
एक-एक वस्तु या एक एक प्राणाग्नि बम है,
ये परमास्त्र है, प्रक्षेपास्त्र है, यम हैं।
शून्याकाश मे से होते हुए वे
अरे, अरि पर ही टूट पडें अनिवार।
यह क्या नही है, यह सब सच है, हा भई !!
नही आग लग गयी, कही गोली चल गयी !!

मानो कि ज्वाला पंखुरियों से घिरे हुए वे सब
अग्नि के शत दल कोष में बैठे !!
द्रुत वेग बहती हैं शक्तियाँ निश्चयी।
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी !!

एकाएक फिर स्वप्न भंग
बिखर गये चित्र कि मैं फिर अकेला।
मस्तिष्क हृदय में छेद पड़ गये हैं।
पर, उन दुखते हुए रन्ध्रों में गहरा
प्रदीप्त ज्योति का रस बह गया है।
मैं उन सपनों का खोजता हूँ आशय,
अर्थों की वेदना घिरती है मन में।
अजीब झमेला।
घूमता है मन उन अर्थों के घावों के आसपास
आत्मा में चमकीली प्यास भर गयी है।
जग भर दीखती हैं सुनहली तसवीरें मुझको
मानो कि कल रात किसी अनपेक्षित क्षण में ही सहसा
प्रेम कर लिया हो
जीवन भर के लिए !!
मानो कि उस क्षण
अतिशय मृदु किन्हीं बाँहों ने आ कर
कस लिया था इस भाँति कि मुझको
उस स्वप्न स्पर्श की, चुम्बन की याद आ रही है
याद आ रही है !!
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी ?

कमरे में सुबह की धूप आ गयी है,
गैलरी में फैला है सुनहला रवि छोर
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी ?
हाय ! यह वेदना स्नेह की गहरी
जाग गयी क्योंकर ?

सब ओर विद्युत्तरंगीय हलचल
चुम्बकीय आकर्षण।

प्रत्येक वस्तु का निज निज आलोक,
मानो कि अलग अलग फूलों के रंगों
अलग अलग वातावरण है बेमाप,
प्रत्येक अर्थ की छाया में अन्य अर्थ
झलकता साफ साफ !
डेस्क पर रखे हुए महान ग्रन्थों के लेखक
मेरी इन मानसिक क्रियाओं के बन गये प्रेक्षक,
मेरे इस कमरे में आकाश उतरा,
मन यह अन्तरिक्ष वायु में सिहरा।

उठता हूँ, जाता हूँ, गैलरी में खड़ा हूँ।
एकाएक वह व्यक्ति
आँखों के सामने
गलियों में सड़कों पर, लोगों की भीड़ में
चला जा रहा है।
वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा में।
धड़कता है दिल
पुकारने को खुलता है मुँह
कि अकस्मात—
वह दिखा, वह दिखा
वह फिर खो गया कि किसी जन यूथ में
उठी बाँह यह उठी हुई रह गयी ??

अनखोजी निज समृद्धि का वह परम उत्कर्ष,
परम अभिव्यक्ति
मैं उसका शिष्य हूँ —
वह मेरी गुरु है
गुरु है ! !
वह मेरे पास कभी बैठा ही नहीं था
वह मेरे पास कभी आया ही नहीं था,
तिलिस्मी खोह में देखा था एक बार,
आखिरी बार ही।
पर वह जगत की गलियों में घूमता है प्रतिपल
वह फटेहाल रूप।

तडित्तरगीय वही गतिमयता,
अत्यन्त उद्विग्न ज्ञान तनाव वह
सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
वही फटेहाल रूप ।।
परम अभिव्यक्ति
लगातार घूमती है जग मे
पता नही जाने कहा, जाने कहा
वह है ।
इसीलिए मै हर गली मे
और हर सडक पर
झाक झाक देखता हू हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि,
प्रत्येक चरित्र,
व हर एक आत्मा का इतिहास
हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक प्रक्रिया, क्रियागत परिणति ।।
खोजता हू पठार पहाड समुन्दर
जहा मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भवा ।

प्रमथ्यु गाथा

धर्मवीर भारती

ज म सन 1926, इलाहाबाद।

कृतिया

कविता सग्रह — कनुप्रिया (1959), सात गीत वष (1959),
ठडा लोहा (1969)

काव्य नाटक — अधा युग

उप यास — गुनाहो का देवता, सूरज का सातवा घोडा

कहानी सग्रह — ब द गली का आखिरी मकान

आलोचना — मानव मूल्य और साहित्य तथा अ य कई निब ध सग्रह।

सम्प्रति — 'धमयुग साप्ताहिक के सपादक

प्रस्तुत कविता प्रमथ्यु गाथा (1959) कवि के कविता सग्रह 'सात गीत वष म सकलित है।

[ये जो जन है, साधारण जन है
उन में से एक-एक के अन्दर
मूर्छित प्रमथ्यु कहीं बंदी है !
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का
कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर
उस के मन को वेध मूर्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।]

प्रमथ्यु गाथा

प्रमथ्यु

जकड़े हुए हैं ये मेरे हाथ
लौह शृंखलाओं से
जड़ी हुई जो कीलों से
इस आदिम चट्टान से,

टूटी हुई हैं पसलियाँ
और मन का घाव
अन्दर का सारा दर्द
नंगा अनावृत है।

द्युपितर की आज्ञा से
नरभक्षी बूढ़ा गृद्ध
मेरे कन्धों पर बैठ
दिन भर नोचा करता है मेरा हृदयपिण्ड
और मैं बेबस हूँ
बन्दी हूँ।

मैंने, क्योंकि मैंने ही
प्रथम बार साहस किया
द्युपितर के महलों से अग्नि छीन लाने का

अधी घाटी म भयभीत भेड के समान
पृथ्वी यह
अधियारे मे थी सहमी खडी

मैंने, हा मैंने ही प्रथम बार साहस किया

द्युपितर

साहस नही था,
मैंने जो नक्शा बनाया था
मानव अस्तित्व का—
उसम थी दासता,
विनय थी, कायरता थी
भय था, आतक था
अधेरा था
यह जो
इस व्यक्ति ने
अधेरे को देकर चुनौती
दुस्साहस किया
यह मेरी सत्ता का प्रथम अनादर था

मैंने इसे दण्ड दिया
वर्जित थी ज्योति
और गर्हित था स्वातन्त्र्य
साहस उत्पन्न ही नही था किया मैंने तब
इसकी यह लायी हुई आग
अगर साहस बन कर फल गयी होती मनुष्यो म
फिर वे उठाते सिर
फिर फिर व उठाते सिर

जन-साधारण

मूरख नही है जो !
हम क्या उठाते सिर
हम क्या ये सब साहस करते व्यथ
अग्नि जिसे लाना था ले आया !

अग्नि नहीं थी जब
तब हम ने नहीं कहा
कि जाओ अग्नि लाओ तुम
और अग्नि जब आयी
हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं लेंगे हम

यह जो हम अब भी खड़े हैं
प्रमथ्यु के आस पास —
इसलिए नहीं कि हम कुछ
उसके अनुगामी हैं,

हम हैं तमाशबीन
देख रहे हैं कैसे जकड़ा हुआ है शिलाओं से
कैसे वह कंधे पर बैठा हुआ गिद्ध
नोच नोच खाता है उसका हृदयपिण्ड
और रात ढलते ढलते कैसे
सारा घाव फिर से पुर जाता है
ताकि गिद्ध फिर नोचे

यह है करिश्मा और
हम सब करिश्मों के प्यासे हैं !
चाहता अगर तो हम में से हर एक व्यक्ति
अपने ही साहस से प्रमथ्यु हो सकता था
लेकिन हम डरते थे,
ज्योति चाहते थे
पर दण्ड भोगने से हम डरते थे !

हम सब करिश्मा के प्यासे हैं
कोई भी करिश्मा कर दिखलाये
हम खुद क्यों लें कोई भी निर्णय
हम खुद क्यों भोगें कोई भी दण्ड ?

अग्नि

वे थे सब स्वार्थी

विलासी थे, कायर थे
जिनके महलों में मैं बन्दी थी

मुक्त किया मुझको प्रमथ्यु ने

उसने कहा
तुम हो ज्योति
तुम्हीं जीवन हो

माथे से लगाकर प्रमथ्यु ने
फेंक दिया फिर मुझको इन कायरों के बीच

मुझसे ये
सुबह शाम चूल्हा सुलगायेंगे
शय्या गरमायेंगे
सोना गलायेंगे
और जरा सा मौका पाते ही
अपने पड़ोसी का सारा घर फूँकेंगे !
मुझको क्या मुक्त किया
मुझको क्यों माथे से लगाकर
फिर फेंक दिया इन कायरों के बीच !

प्रमथ्यु

मुझको मालूम नहीं था कुछ भी
डूबा था सब कुछ अँधियारे में
अँधियारे में मैं भी डूबा था

अग्नि किसे कहते हैं
इसका आभास भी नहीं था मुझे
गिद्ध यह बैठा है जो मेरे कन्धों पर
ऊपर उड़ते उड़ते पहली बार इसने देखी थी झलक अग्नि की !

साहस था भरा
किन्तु द्युपितर के महलों की गुप्त राह

इसने बतायी मुझे—
गुरुजन है !
सच है यह
मेरे कन्धा पर बैठ
नोच-नोच खाता है यह मेरा हृदयपिण्ड
फिर भी मेरा मस्तक नत है
हाठा को भींचे नि शब्द सह रहा हूँ मैं
क्योंकि यह बूढ़ा गिद्ध गुणी है, ज्ञाता है ।

मस्तक नत है मेरा
इसलिए नहीं कि हूँ पराजित मैं
इसलिए नहीं कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ
उनमें नहीं है साहस या संवेदना
जिसमें नहीं है साहस प्रमथ्यु बनने का
उसको बिना पीडा के मिल जाने वाली अग्नि
माजती नहीं है
और पशु ही बनाती है !
अग्नि मिलने पर भी
वे सब पशु के पशु है
जिनको नृशंस स्वाद आता है
मेरी इस असमान्तर पीडा मे !
देता है जो बूढ़ा गिद्ध
मेरे ही कंधो पर बैठकर

गृद्ध

कटु मत हो
सुनो वत्स !
शोभा नहीं देती है कटुता प्रमथ्यु को
सच है यह
मैंने ही प्रेरित किया था तुम्हें देव अग्नि लाने को
क्योंकि धरा पर नीचे गहरा अँधियारा था

जीवन भर मैंने आकाश मे
निरर्थक चक्कर काटे

ऊँचे पवत, ऊबड खाबड घाटी वाली
धरती पर कसे उतरता मैं ?
नीचे अधियारा था
अब मैं बूढा हूँ
और मेरे थके हैं पख
कब तक आकाश मे विहार करूँ
सिवा तुम्हारे इन सबल पुष्ट कधो के और कहा बैठू मैं ?

कटु मत हो !
आहत है मेरा अहम
मेरे थे पख और मैने देखी थी अग्नि
मैं भी ला सकता था
किन्तु एक थोडे से साहस के बगर
मैं अग्नि जीत लाने से वचित रहा

तुम हो मेरे प्रियजन
मेरा यह आहत अहम
अगर तुम्हारे मासपिण्ड से बुझाता है
अपनी भूख
तो तुम क्या इतना भी नही सहोगे मेरे लिए

सुनो वत्स !
मुझको यदि मानते हो गुरजन
तो बात सुनो
सहते चलो सब कुछ
माथे पर शिकन नही लाना कभी
मन मे घृणा नही लाना कभी
घृणा वह जहर है
जो नसो म प्रवाहित
रक्त को दूषित करता है
और वह रक्त
यह तुम्हारा रक्त
अततोगत्वा मुझको ही तो पीना है !

प्रमथ्यु

पियो !
जी भरकर पियो,
गुरुजन हो
मेरी शिराओं में रक्त बह रहा है तुम्हारा ही
जी भर पियो !

कटु मैं नहीं हूँ
घृणा किससे करूँगा मैं

ये जो जन हैं, साधारण जन हैं
उनमें से एक एक के अन्दर
मूर्च्छित प्रमथ्यु कहीं बन्दी है !
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का

कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ा सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे !
उस दिन
हाँ, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नहीं
सबके हृदयों में मैं जागूँगा
मैं—प्रमथ्यु
कटु मैं नहीं हूँ
घृणा किससे करूँगा मैं ?

आत्म हत्या के विरुद्ध

रघुवीर सहाय

जन्म सन् 1929 लखनऊ।

कृतियां

कविता-संग्रह सीढ़ियों पर धूप में (1960), दूसरा सप्तक (1951) दोनों 'अज्ञेय' द्वारा संपादित, आत्म हत्या के विरुद्ध (1967) हँसो हँसो जल्दी हँसो (1975)।

कहानी संग्रह 'रास्ता इधर से है' (1972) कुछ कहानियाँ 'सीढ़ियों पर धूप में' में संकलित हैं।

सम्प्रति 'दिनमान' समाचार साप्ताहिक का संपादन।

प्रस्तुत कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' (1967) कवि के इसी शीर्षक के कविता-संग्रह से संकलित है।

[कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ रूठ
मत डूब सिर्फ टूट]

आत्म हत्या के विरुद्ध

समय आ गया है जब तब कहता है सम्पादकीय
हर बार दस बरस पहले मैं कह चुका होता हूँ कि समय आ गया है

एक गरीबी, ऊबी, पीली, रोशनी, बीवी,
रोशनी, धुंध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य
डब्बाबन्द शोर
गाती गला भींच आकाशवाणी
अन्त मे टडग

अकादमी की महापरिषद की अनन्त बैठक
अदबदा कर निश्चित कर देती है जब कुछ और नही पाती
तो ऊब का स्तर
एक गीली उँगली का निशान डाल दस्तखत कर
तले हुए नाश्ते की तेलौस मेज पर

नगर निगम ने त्योहार जो मनाया तो जनसभा की
मन्थर मटकता मन्त्री मुसद्दीलाल महन्त मंच पर चढ़ा
छाती पर जनता की
वसन्ती रंग जानते थे न पसारी न मुसद्दीलाल
दोनो ने राय दी
कंधे से कंधा भिड़ा ले चलो
पालकी

कल से ज्यादा लोग पास मँडराते हैं
जरूरत से ज्यादा आसपास जरूरत से ज्यादा नीरोग
शक से कि व्यर्थ है जो मैं कर रहा हूँ
क्योंकि जो कह रहा हूँ उसमें अर्थ है।

कल मैंने उसे देखा लाख चेहरों में एक वह चेहरा
कुढ़ता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
वही था नाटक का मुख्यपात्र
पर उसकी ठस पीठ पर मैं हाथ रख न सका
वह बहुत चिकनी थी।

लौट आओ फिर उसी खाते पीते स्वर्ग में
पिटे हुए नेता, पिटे अनुचर बुलाते हैं
मार फड़फड़ाते हैं पंख साल दो साल गले बँधी घंटियाँ
पढ़ी लिखी गरदनें बजाती हैं फिर उड़ जाता है विचार
हम रह जाते हैं अधेड़
कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूँगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ
मत डूब सिर्फ टूट जैसे कि परसों के बाद
वह आया बैठ गया आदतन एक बहस छेड़कर
गया एकाएक बाहर जोरों से एक नकली दरवाजा
भेड़ कर
दर्द दर्द मैंने कहा क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
गरजा मुस्टंडा विचारक—समय आ गया है
कि रामलाल कुचला हुआ पाँव जो घसीट कर
चलता है अर्थहीन हो जाय।

छुओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नहीं जैसा विज्ञापन में छपा
ओठ नहीं

है
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नहीं—साला मेरा भाई मुझे पाँव तले
रौंदकर, अंग्रेजी।

कितना आसान है पागल हो जाना
और भी जब इस पर इनाम मिलता है
नकली दरवाजे पीटते हैं जवान हाथों का
काम सर को आराम मिलता है दूर
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है
एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूड़ियाँ
नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी दे

अस्पताल में मरीज छोड़कर आ नहीं सकता तीमारदार
दूसरे दिन कौन बतायेगा कि वह कहाँ गया
निष्कासित होते हुए मैंने उसे देखा था
जयपुर-अधिवेशन जब समेटा जा रहा था
जो मजूर लगे हुए थे कुर्सी ढोने में
उन्होंने देखा एक कोने में बैठा है
अजेय अपमानित
वह उसे छोड़ गये
कुर्सी को
सन्नाटा छा गया

कितना आसान है नाम लिखा लेना
मरते मनुष्य के बारे में क्या करूँ क्या मरते मनुष्य का
अन्तरंग परिषद से पूछ कर तय करना है कितना
आसान है कितनी दिलचस्प है नेहरू की
आशंसा पाटिल की भर्त्सना की कथा
कितनी घुटन के अन्दर घुटन के
अन्दर घुटन से कितनी सहज मुक्ति

कितना आसान है रख लेना अपने पास अपना वोट
क्योंकि प्रतिद्वन्द्वी आयोग्य है
अत्याचारी हत्या किये जाय जब तक कि स्वर्णधूलि
स्वणशिखर से आकर आत्मा के रचना खण्ड
किये जाय
गोल शब्दकोश मे अमोल बोल तुतलाते
भीमकाय भाषाविद हाँफते डकारते हुँकाते
अंग्रेजी की अवध्य गाय
घंटा घनघनाते पुजारी जयजयकार
सरकार से करार जारी हजार शब्द रोज
कँद

रोज रोज एक और दल एक शोध एक बोध
और नापैद
कल पदा करना होगा भूखी पीढ़ी को
आज जो अनाज पट भरता है
लो हम चले यह रखते हैं उवरक सम्बन्धी
कुछ विचार
मगन से बोले विनोबा से जैनेन्द्र दिल्ली मे बहुत बड़ी लपसी
पकायी गयी युद्ध से बदहवास
जनता के लिए लडो या न लडो
भारत पाकिस्तान अलग-अलग करो
फिर मरो मद्दिल कर
भूल जाओ
राजनीति

अध्यापक याद करो किसके आदमी हो तुम
याद करो विद्यार्थी तुम्ह आदमी से
एक दर्जा नीचे
किसका आदमी बनना है—दद ?
दद, गैराती अस्पताल म डाक्टर न कहा यह मरा काम नहीं
यह मुसद्दी का है
वहीं भेजना है मुझे मिलकर इसे अच्छा करो
जो तुम बीमार हो तो तुमने उस पुण्य नहीं किया होगा

थब तुम बीमार हो तो उसे खश करो
कुछ करो
उसने कहा लोहिया से लोहिया न कहा
कुछ करो
खश हुआ वह चला गया अस्पताल म भीड
भौचक भीड धाँय धाँय
सौ हजार लाख दद आठ दस क्रोध
तीन हजार बद बाजार भय भगदड गद
लाल
धाह, धूप छाह, नही घोडे ब दूक
धुआँ खून खत्म चीख
कर हम जानते नही
हम क्या बनाते है
जब हम दफनाते हैं
एक हताश लडके की लाश बार-बार
एक बेबसी
थोडी सी मिटती है
फिर करन लगती है भाँय भाय
समय जो गया है उसके स नाटे म राष्ट्रपति
प्रकट देते हुए सीख समाचार मे छपी
दुधमुही बच्ची खाती हुई भीख
खिसियाते कुलपति
मुसद्दीलाल
घिघियाते उपकुलपति
एक शब्द कही नही कि वह लडका कौन था
क्या उसके बहनें थी
क्या उसन रक्खे थे टीन के बक्से म अपने अजूबे
वह कौन कौन से पक्वान
खाता था
एक शब्द कही नही एक वह शब्द जो वह खोज
रहा था जब वह मारा गया।

स नाटा छा गया
चिट्ठी लिखते लिखते छुटकी ने पूछा

'क्या दो बार लिख सकते हैं कि याद
आती है ?'
'एक बार मामी की एक बार मामा की ?'
नही, दोनो बार मामी की'
'लिख सकती हो जरूर बेटी', मैंने कहा
समय आ गया है
दस बरस बाद फिर पदारूढ होते ही
नेताराम, पदयुक्त होते ही न्यायाधीश
कहता है। समय आ गया है—
मौका अच्छा देखकर प्रधानमंत्री
पिटा हुआ दलपति अखबारो से
सुदर नौजवानो से कहता है गाता बजाता
हारा हुआ देश।
समय जो गया है
मेरे तलुवे से छनकर पाताल म
वह जानता हूँ मैं।

मुक्ति प्रसग

राजकमल चौधरी

जन्म सन् 1929, मृत्यु सन् 1967

कृतिया

कविता सग्रह स्वरगधा (1958), ककावती (1964) मुक्ति प्रसग (1966)

उपन्यास आदि कथा (1959) नदी बहती है (1961) एक अनार एक बीमार (1964 65), मछली मरी हुई (1966) देह गाथा (1966), शहर था शहर नही था (1966)

कहानी सग्रह आदमी अब नही, आधी रात का सूरजमुखी, सामुद्रिक और अन्य कहानिया।

प्रस्तुत लम्बी कविता 'मुक्ति प्रसग' पुस्तक रूप म पहली बार 1966 म प्रकाशित हुई थी।

[एक ही प्रार्थना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की व्यक्तिगत प्राथना
अपनी मुक्ति के लिए—
सगठन और सस्थाओ के विरुद्ध हो जाना अर्थात शासन तन्त्र और
सेनाओ के
विरुद्ध हो जाना अपनी इकाई बचाने के लिए एक ही प्राथना
वास्तविक जीवन मे और कविता मे]

मुक्ति प्रसंग

दोनो आखा की ज्वालामुखी पिघल जाने के उपरान्त मैं उसकी बाहो मे
यूनिसेफ एम्बुलस की दुगति मेरे नशे म डूबी हुई
मैं ही प्राप्त करूगा

इस नगरवधू को महाश्मसान बनाने का श्रेय
मेरे ही रक्त के शख चक्र सामुद्रिक स्वाद म
जलते हुए मेरे ओठ दुहराते हैं वही एक शब्द बार-बार बीजमन्त्र
वही एक नाम कामतन्त्र

छत से पलग तक झूलती हुई रस्सी का फदा और सर्जिकल अस्पताल
तक की इस स्वप्न यात्रा म कहता है उपाध्याय
कुछ नही होगा तुम्ह
वैसा जो नही हुआ है अब तक मर्मान्तक किन्तु
मेरा चेहरा मेरी गरदन मेरे कन्धे काले पत्थर की अपनी बाँहो म
समेट कर वह मुस्कराती है वही होगा वही होगा
रोक लिया गया था
अब तक जिसे विपरीत ऋतुओ और मागलिक नक्षत्रो के कारण
मसूरी हिल की नीली दरारो म योगासन
करती हुई देवकन्याएँ
या नीरज भीतर ओवरब्रिज पर गाय हुए लावारिस
और ओरटाप्स
चौवारोला के नीचे ग्लास म

रस डालकर देह की राजनीति करती थी
मजू हालदार
नीली नदी थी मेरे गाँव की उन्मादिनी
नीली उग्रतारा
उपाध्याय कहता है कुछ नहीं होगा वापस चले आओगे तुम
नदी के किनारे मे वापस चले आना तुम्हारी नियति है हर बार प्रत्यागमन
यह आदिपन यह नीलापन
तुम नहीं पाओगे अपराजिता कभी नहीं
मैंने नहीं ऋषि शकराचाय ने सागर-तट पर प्राप्त की थी
जाँघो म अग्निपिंड वाणी म स्तुति शब्द आँखो म
ज्वालामुखी पिघल जाने के उपरान्त
यह नीलकन्या

फिर भी मेरे ही रक्त म सामुद्रिक स्वाद मे सने हुए मेरे ओठ दुहराते हैं
वही एक शब्द बार बार वही एक नाम वही एक नदी
वही एक नीली उग्रतारा
जिसे मैं धन्यवाद देना चाहता हूँ अपनी आन्तरिक कृतज्ञता
इस दशमुख विध्वस के लिए
सडी हुई आखो का मवाद ईथर की गन्ध किडनी म
कैंसर के रक्तश्वेत पुष्प
चौराहे पर मरा हुआ रक्तप्रलय कुण्डलिनी का काल-सप खण्ड खण्ड
खण्डित ध्वजा-दण्ड खण्डित मूर्तिया
अस्थि-सीमाओ की लक्ष्मण रेखाएँ नहीं रही दृष्टिदोष
मृत हुए
मेरे दशाश्वमेध के सभी अश्व नौकाएँ डूब गयी गगाजल म
रबर के लाल-बैंगनी ट्यूब नाक मे नसो मे
मेरे पेट म केवल वमन
नीद नहीं क्षुधा नहीं पागलपन केवल वमन यह दुराग्रह
उपदश महादश की नरककुण्ड बीजात्माएँ
अब भी मात्र उस एक नीलकन्या मे मेरे लिए
परिणत हो
मैं धन्यवाद देना चाहता हूँ उसको मात्र एक उसको निर्विकार
इस दशमुख विध्वस के लिए
क्योंकि रह जाता अखण्डित ध्वजा दण्ड तो मैं अपने ही

घटनाविहीन पूर्वजन्म के मरघट में
भटकता रह जाता
अपनी शिनाख्त ढूंढता हुआ अकेले और रेस्तराँ-होटल में
मिले हुए अतीत-यात्रियों के साथ
अपनी विधवाओं के साथ गंगासागर की तीर्थयात्रा
प्रजा स्थानों के लिए
प्रजा-जनों के विरूपाक्ष जुलूस में मौसमी ग्राट थामे हुए
आकाशवाणी से मौसम और युद्ध सभाओं की
नपुंसक सूचनाएँ
दैनिक समाचारपत्रों में वियतनाम हिरोशिमा घाना रोडेशिया
अपने देश में एटम बम बनेगा नहीं बनेगा
नागरिक भद्र महिलाएँ
अपनी हरी-लाल-पीली-सफेद-काली छतरी के बदले अब से
सूप छतरी या एटम छतरी इस्तेमाल करें

ऑपरेशन टेबुल पर ईथर निद्रा में अथवा सम्भोग की चरम परिणति में
स्वाभाविक सुविधाप्रद होगा मेरा मरण
जाँघों के ऊपर कृष्ण प्रदेश के महारोगों से ग्रस्त भूख
लाइलाज अनिद्रा रक्तचाप
रेल-दुर्घटनाओं पशु मैथुन से ऊब कर
मैंने यही निर्णय किया
उसके पहले अथवा एम्बुलेंस में उसके आगमन से पहले किन्तु
कभी यह सिद्ध कर लिया जाएगा मैंने उसे देखा
मांसपेशियों में अपनी रक्त नलिकाओं के
विपरीत प्रवाह में
और कविता में —जटिल थे किन्तु शासित-अवांछित भी थे
कोई काव्य-खण्ड या प्रतिमा बनाने के योग्य नहीं थे अनुभव
संगीत रंग पीड़ाएँ मेरे अन्तराल में
रोगदग्ध परिस्थितियाँ
मैं अपने जर्जर शरीर में तेरह हजार मील दूर निर्वासित मूंगे की टूटी हुई माला
अष्टधातु की अंगूठी तीर्थजल की खाली बोतल में बन्द
सम्मोहित वशीभूत प्रेत
अपनी अतीन्द्रिय चेतना की अन्तहीन यात्रा प्रक्रिया से पलायित
अभिप्रेत

इस प्रकार स्थान-पात्रों में घुलमिल जाता था संगीत
बन जाता था जुलूस भूख माच हाहाकार
रंग में अल्कोहल भाषा में केवल बीते हुए गलित क्षण केवल चीत्कार
आम चुनाव में किस जाति को करना होगा मतदान
कौलिक पूजागृह से चुरा कर बेचे गये
शालिग्राम के बदले
खरीद लाये गये शक्तिपीठ योनिमुखों में सात नरकों की दुर्गंधियां
भस्म हो गयी सती दहन दुर्गंध में धुएँ में
इक्कीस साल पहले
इड़ा पिंगला सुषुम्ना मेरी जुड़वा बहनें
अंतिम उपहार देकर मुझे नरहत्या क्षुधा मदिरा निद्रा नहीं केवल वमन
श्याम बाजार और टालीगंज के फुटपाथों पर बिकता हुआ
मेरा अवचेतन
और अब इतिहास पुस्तक की तरह इस आपरेशन टेबुल पर
रोशनी के प्रज्वलित गोलाम्बर में खुला पड़ा हुआ मेरा अस्तित्व
एक बुझा हुआ लैम्पपोस्ट मेरी दो आँखों में
जांघों के बीच चौराहे पर मरा हुआ रक्तवर्ण सांप एक मरी हुई
नदी मेरे पाँवों में लिपटी हुई एक स्त्री
बरामदे पर खम्भे की आड़ में आत्महत्या करती है कहती है लेकिन अब भी
मुझको ही मार्कण्डेय मुनि
मृत सागर में वटवृक्ष के नीले पत्ते पर सोया हुआ
वह आदिशिशु
मैं ही उसे बाँहों में उठाकर लाऊँगा
पृथ्वी पर

मैं नहीं जानता लेकिन वह स्त्री कौन है मेरे चतुर्दिक सफेद गाउन सफेद
मास्क सफेद प्लास्टिक-दास्तानों में छिपे हुए
मेरी छाती और मेरे पेट पर झुके हुए कौन हैं इतने सारे लोग
मैं कुछ नहीं जानता हूँ
स्त्रियां नदियां बीमारियों भूख जन्म अपराध ईश्वर मृत्यु दास्तावस्की
हिरोशिमा विधान सभाओं के विषय में कुछ नहीं
आदमी क्या प्यार करता है युद्ध क्या परिवार नियोजन
क्यों बर्लिन की दीवार
क्या देश प्रेम क्या अफीम की गोलियाँ क्या चैप्लिन की फिल्म

क्यो ताशकन्द सम्मेलन क्यो रीढ की हड्डियो मे
गग्रीन
मादाम नू क्या क्यो दास-कैपिटल
क्या सुकरात क्यो सेगाव की बौद्ध भिक्षुणियाँ जल मरती हैं
क्या गोर्गातुआ की कहानियाँ क्यो कश्मीर के लिए
सेनाएँ क्यो अजन्ता
क्या एक ही युद्ध मेरी कमर की हड्डिया मे और कभी वियतनाम म
होता है क्यो इन्दिरा गाधी क्या तुम वह
मैं क्या कुछ नही कुछ नही
अतएव मैंने फोन किया ब्लैक आउट के अँधेरे मे उस पार
अपने रेडियोग्राम म डूबी हुई लडकी ने बताया सच हमारी मा मर गयी कल
रात सोफे पर लेटी थी चुपचाप मर गयी
कोई कपडा नही है उसकी देह म सिर्फ एक दाग है स्तनो के
बीच सीने पर
डूबी हुई लडकी को कोई उत्तर दिया नही मैंने केवल
पिछले साल भर के अखबार
रेडियोसेट कवियो और प्रकाशको के पत्र टेलीफोन पुरानी पाडुलिपिया
मनी प्लाट की लताएँ बरसो से बन्द दीवार घडी
कलेण्डरो मे सोये हुए बच्चे हरिन फूल
चिडिया झरने पहाडी गाव औरतें चाय के बागान
बचपन का प्यार अलबम अपनी छोटी मा का हाथ थामे हुए चकित मैं
हरसिंगार के नीचे खडा हूँ
पराजय के तीस वर्षों मे एकत्र की गयी धम सेक्स इतिहास
समाज-परिकल्पना ज्योतिष की किताबे डाक टिकट
सिक्के सोवेनिर
मैं बडे डाकघर मे बहुत बडे लेटरबाक्स म डाल आया
वापस आकर अपनी स्त्री से मैंने कहा पुलिस पत्रकार कवि मित्र पार्टी कामरेड
कोई भी मिलने आये सूचित करना है—
सबके लिए सबके हित म अस्पताल चला गया है
राजकमल चौधरी
लिखने पढ़ने सोने गाँजा-अफीम सिगरेट पीने मरने का अपना एकमात्र कमरा
अन्दर से बन्द करके दोपहर दिन के पसीने पेशाब वीयपात
मटमैले अँधेरे म लेटे हुए
धुआँ क्रोध दुर्गन्धिया पीते रहने के सिवा

जिसने कभी कोई बडा काम नही किया अपनी देह
अथवा अपनी चेतना म
इस उग्र तक
जटिल हुए किन्तु कोई भी प्रतिमा बनाने के योग्य नही हुए उसके अनुभव
नही निद्राएँ और नही पैशाची सभोग
यातनाएँ भी नही
मेरे फेफडा के अन्दर मलयान की वैष्णवी मुद्रा मे बठा हुआ
ग्वायपोश नकली ईश्वर
देखता रहा है लगातार ऊँघती आखो से मेरी स्त्री का अवरुद्ध गभ विवर
कभी-कभी उसके झुर्रीदार वनमानुष पजे
मेरा व्याकरण छूते है
दोना पावो से पैडिल मारता है वह मेरी खिडकिया को कभी कभी
किसी भी नरभक्षी गुफा मे कोकेन म किताबो म
किसी भी लाश पर मुडे हुए घुटना मे
मुझको विक्षिप्त अथवा बहोश करने से पहले नीचे उतरता हुआ अँतडियों की
काली सीढिया म अचानक गायब हो जाता है वह ईश्वर
वह ईश्वर सिफलिस भस्मासुर लाओ रसे इस कुरुक्षेत्र मे पराजित
दुर्योधन मेरे शरीर के लावारिस
पब्लिक पार्क मे
और/अथवा
वियतनाम म उडी पुछ म यू० एन० ओ० मे तिब्बत बस्तर काले अफ्रीका मे
वह आगे बढता है राइफल का निशाना साधने के लिए
मेरे ही कलेजे पर मस्तिष्क पर
वह मेरा सनिक वह मेरा जासूस वह मेरा ईश्वर
नागालैंड मे विदेशी बमा से निरीह यानी रेलगाडिया उडाता है शान्तिपूवक
शान्तिपूवक कभी भेजता है कोरिया कभी क्यूबा कभी पाकिस्तान
कभी वियतनाम कभी अल्जीरिया
कभी अपनी सस्कृति कभी अपनी मशीन अपने टक जहाज हथियार
मूल्य नियन्त्रण के लिए कभी उडीसा म दुर्भिक्ष
काहिरा म कभी शक्ति-सम्मेलन युद्ध अणु-आयुध नियन्त्रण के लिए
कभी दण्ड कभी साम
कभी ईसामसीह और कभी वश्याओ के नाम

निम्फेट लडकिया के बलात्कार हत्या पशु यन्त्रणाओ के सगीतस्वर टेप म

सग्रह भरता है इयान प्र डी कवि है
चार टाइपिस्ट लडकिया सचिवालय की छत से नीचे कूद जाती है
एक दिन एक साथ
चन्द्रमा के वक्षस्थल पर बैठ कर चित्राकन करता है सर्वेयर विमान
वैज्ञानिक राजनेता और स्त्रीअगो के व्यापारी
कुल तीन ही प्रभु जातिया रह गयी है अब स्वयभू अस्तु
मैं क्रीतदास हूँ
प्रभु जातियो के दासो का दासानुदास मेरे लिए
चिडियाँ हरिन फूल झरने नदी पहाडी स्त्रिया कच्ची सडकें और गाव
नही रह गय है
रह गये है अपन शरीर के क्षत विक्षत मासपिड—मैं
केवल मासपिड किन्तु सोचता रहता हूँ
ईश्वर और सरकारी जासूसो के बारे म चुपचाप सोचता रहता हूँ नही
यहा नही मैं इस कटघरे मे नही साक्षी दूगा स्वीकार
नही करूँगा औरो के अपराध
मेरे वकील और मेरे न्यायाधीश यहाँ नहीं उन सफेद ठडे
कमरे म
प्रतीक्षारत हैं मेरे लिए यहा नही बालूगा
सफाई के वकीलो अभी मैं चुप हूँ और अभी मैं चिन्ताग्रस्त हूँ
केवल यह तमाशा देखता हूँ मैं अभी लोग किस तरह
ऊँची दीवारो पर सीढियाँ दर सीढिया लगाकर
उस पार कूद जाते हैं आखे बन्द किये पेट और पिडलियो पर रक्खे हुए
दोनो हाथ
और हाथो म अपना ही कटा हुआ सिर आत्मरति और
परपीडा के लिए
फाइलो रजिस्टरो की बन्द खिडकिया म छिपकर काली सफेद रोटिया
निगलते हैं किस तरह किस तरह अपने मालिको के लिए
रखते है कन्धे पर राइफल
माथे पर आय-करो के वही-खाते दिमाग मे व्यापारिक रहस्य व्यक्तित्व मे
लचीलापन बाजार-दरो का रोकडो का ।
गृहस्थ पुरुषो गृहस्थ स्त्रियो गृहस्थ परिवार आयोजना के
जनतान्त्रिक सबधो को समझ लेना
अनिवार्य है
मेरे देश और मेरे मनुष्य का भविष्य निर्धारित करने के लिए अतीत

निर्धारित करने के लिये
मैं इतिहास पुस्तक की तरह खुला पडा हुआ हूँ
लेकिन मेरा देश मेरा पेट मेरा ब्लाडर मेरी अँतडिया खुलने से पहले
सजना को यह जान लेना होगा
हर जगह नही है जल अथवा रक्त अथवा मास
अथवा मिट्टी
केवल हरा कोडे जख्म और गन्दे पनाले हैं अधिक स्थानो पर इस देश म
जहाँ सड कर फट गयी हैं नमें वहाँ हवा तक नही
ऊपर की त्वचा चीरन पर आग नही निकलेगी नही धुआ
जठराग्नि दावानल
सब बुझ गये अचानक पहले पन्द्रह अगस्त की पहली रात के बाद
अब राख ही राख बच गया है पीला मवाद

ग्यारह बजकर उनसठ मिनट पर हर रात शहीद-स्मारक के नीचे नगी होती है
पागल काली एक मरी हुई स्त्री
उजाड आसमान मे दोनो बाह फैला कर रोने के लिए
रोते हुए सो जाने के लिए पानी और अनाज के देवताओ से भीख मागती है
तिरगा फहराने के अपराध म मार डाले गये
1942 के छात्रो के नाम पर
बारह दफा उसे चुप करती है राज्य सचिवालय की आदमकद घडी
कुल एक मिनट बाद इस नाम पर कि पाच लाख
पच्चीस हजार छह सौ मिनटो के निमम यन्त्र चक्र म होते हैं
उत्पादित अनाथाश्रम
एक सौ बीस लाख पच्चीस हजार भारतवासी
जनसख्या के ध्रुवमुखी ग्राफ म भारत भाग्य विधाता चूहो से
कम खतरनाक नहा होते
अतएव अरण्य रोदन सुनकर मैंने तय किया था
स्मारको और सचिवालयो को हमेशा के लिए भूल जाऊँगा
लेकिन
यह पागल काली मरी हुई आतकित अनगढ स्त्री चिपकाऊँगा
अपने ओठो मे उसके ओठो म अपने शब्द
वाक्य भाषाएँ
अपने मुहावरो स उसकी बजर धरती को नहलाऊँगा
कविता सावतन्त्र दाता र लिए शुचिराजनर-स्वास्थ्यन्याय यही होगा

बस्तर नागालैंड कालिम्पोंग हजारीबाग की
काली पथरीली चट्टानें
की स्कूल स्ट्रीट अथवा पार्लियामेंट स्ट्रीट में मूर्तिमान स्थापित करना
करने लायक और क्या बच गया है कर्म
धारण करने लायक और क्या रह गया है अपना धर्म
आकण्ठ डूब गये हैं
जितने भी थे प्राचीन सम्प्रदाय राजनीतिक सती विधवाओं की सरकारी
लोक-संग्रहकारी आत्महत्याओं में
शवदाह के लिए उपयुक्त हैं निजी सेक्टर के नासिहा की
जनजंघाएँ
स्थान-काल पात्र सब न्यायिक नैयायिकों के एक्ट बिल बजट में
सिमट आये हैं दूषित-दुर्गन्धित

जीना चाहते थे जीवन धारण किये रहना चाहते थे यही था
बालखिल्य ऋषियों का पाप इसीलिए उन्हें बार बार
चौदह बूँद मात्र दूध के लिए
लटकना
पड़ता
था
लोकतन्त्र पर लटके हुए चमगादड़-स्तनों में
अपने राग अपनी भूख अपनी नींद अपने युद्ध में प्रत्येक आदमी
बालखिल्य ऋषि है अपने अन्दर
किसी चमगादड़ मन्त्री उपमन्त्री अन्नपूर्णा उग्रतारा की एक मूर्ति
अपने घर अपने मन्दिर में स्थापित करता है
अपने पाँवों में बाँधता है एक तन्त्र साँप अथवा एक रक्तधारा नदी
भगीरथ के वंशज एक पुण्यदेहा जाह्नवी स्पर्श के बिना
मोक्ष नहीं पाएँगे
और अब 1966 में स्मरण करने से क्या लाभ है जाह्नवी के सहस्रों पुत्र
मार डाले गये थे तीन रंगों का एक चिथड़ा
अपने ही रक्त से रंगे गये आकाश में फहराने के लिए
चौबीस वर्ष पहले जो बीत गया है उसे दुहराया क्या जाए
पाठ्यपुस्तकों में अथवा दलालों के द्वारा लिखे गये इतिहासों में
इस नाटक के प्रारम्भ में ही अतएव
अपने कवि से कहना चाहता था मैं आत्मरक्षा के लिए

आओ प्रणति मुद्रा म
इस मूर्ति के सम्मुख झुक जाएँ साष्टांग आत्मसमर्पित
स्वीकार कर लें इस युग के समस्त पाप
सीता और अहल्या से अब तक की सारी भ्रूण हत्याएँ हमने की हैं
हमने ही असुरा अग्निपिडो चद्रमाओ कुमारी कयाओ से
किया है देवता ब्राह्मण रक्त तपण
दधीची अस्थियो का प्रभुसत्ता के दासो की हत्या म उपयोगी किया है
गलियो दूकानो कार्यालयो कारखानो राजभवनो के अहाते म
हड्डिया चबाते हुए सारे श्वान पुरुष
रक्त मास बेचते हुए
हमारे आत्मज है हमारा ही रक्त वीय मज्जा रोग है उनम
साढे दस हजार वर्षों के अथक परिश्रम से
इस ऊष्णगर्भा उवरा धरती को मरघट स्वच्छानुसार हमने ही बनाया है
मनु शत रूपा आँगन मे सत्ता का विषवृक्ष
हमने ही लगाया है
आओ इस राजभवन म इस कारागह मे अतएव चि तामिमुक्त हो जाएँ
उतार डाले अपने चेहरे अपनी नकाब
अपना इतिहास कवच अपना वतमान शिरस्त्राण
नग्न निशस्त्र हो जाएँ ग्यारह बजकर उनसठ मिनट के सामने
अपने मुट्ठियो म थामे हुए अपना व्याकरण
पुस्तकालयो विश्वविद्यालयो के चौराहो पर खडे हो जाएँ सुन नगरवासी सुनें
सम्राट हषवद्धन आज वापस लेंगे प्रजाजनो से राजपाट
अन्नसग्रह स्वण रथ माणिक सेना मुद्राएँ
सारा कुछ जनता से वापस लेकर अर्पित करेंगे ससदीय अधिनायकवाद के
चरणो पर
नीले काच का फूलदान है मेरा देश
नये हर्षवद्धन जयवद्धन के लडखडाते पावो की ठोकर से
टूट कर बिखर जाता है युद्ध और व्याधियो की इस वध्या ऋतु म
शीशे के बेडौल बदरग टुकडे
मेरी देह की काली गुफाओ म धँसते है मेरे अन्दर अनायास वह
पौराणिक सप आकाशवाणी के राष्ट्रीय गीतो स
लहूलुहान हो जाता है
फिर भी गभान्धो की दास वत्ति पुष्पमालाएँ शिष्टाचार दशभक्ति कोकेन
लाता है नसो म नाभिरस-कस्तूरी-सचार

रोशनी की ग्रन्थ मांसपिंडों की वेद ध्वनियाँ
रंगों की आकृति वर्णों के दस आयाम
देह की राजनीति
देह की राजनीति से विकट सन्निकट और कोई राजनीति नहीं है मजय
अन्न और अफीम की राजनीति यहीं शुरू होती है
जन्म लेता है यहीं मूह-मारीच
लोक सभा में अन्न मन्त्री कहते हैं खाते हैं कोई पाँच अरब चूहे
इस देश में
बजट के अंकों टैक्सों के रेखागणित में डूबे हुए इस देश में चूहों की
जनसंख्या सबसे भयानक प्रश्न है
लूप का इस्तेमाल करना चाहिए निरन्तर आत्मसंयम के लिए
इस प्रश्न पर नियन्त्रण के लिए
यह प्रश्न ही है हमारा वर्तमान
केवल वर्तमान में जीते हैं अब समस्त प्रजाजन
मर जाते हैं अतीत में और भविष्य में मर जाते हैं
भीड़ जुलूस लाठी चार्ज जन-आन्दोलन आम सभाओं के श्रोता वक्ता भोक्ता
गेहूँ के सिवा कोई बात नहीं कहते
आदमी चन्द्रमा को बना ही डाले अपना उपनिवेश
आदमी ईश्वर शैतान धर्म नीति से स्वाधीन हो जाए क्या होता है
आदमी लिखे एब्सर्डिटी का दर्शनविधान
आदमी सुदूर दक्षिण वन जातियों में ढूँढ़ता रहे केज पौधों की समाधि
आत्मसाक्षात्कार
आदमी वर्ल्ड-बैंक से तीस करोड़ डालर ले आये
आदमी खुद बिके अथवा बेच ही डाले अपनी स्त्री अपनी आँखें अपना देश
मगर भीड़ अन्न धान के लिए गेहूँ
और सो जाने के लिए किसी भी गन्दे बिस्तरे के सिवा कोई बात
नहीं कहती है
प्रजाजनों के शब्दकोश में नहीं रह गये हैं दूसरे शब्द दूसरे वाक्य
दूसरी चिन्ताएँ नहीं रह गयी हैं
किन्तु भीड़ से विच्छिन्न असंपृक्त रहकर भी भीड़ से मुक्त मैं हो नहीं पाता हूँ
मुक्त हो जाना कविता से पहले और मृत्यु से पहले
मुक्त हो जाना असंभव है

पेथेडीन इन्सुलिन दवाखाने बच्चों के स्कूल में फीस क्षमा कराने के लिए

नीद के लिए सिनेमाघर राशन की दूकान रेडियो स्टेशन मे
इन्दिरा गाधी के बचपन पर वार्तालाप दुर्गा समारोह
रामकृष्ण-आश्रम मे
सरकारी दूकान से गाँजा अफीम और खरीदना 50 नम्बर की शराब
आय कर विभाग को लिखना एक ही जवाब
इस उम्र तक दो हजार रुपयो से ज्यादा किसी साल मेरी हुई नही किसी तरह
आमदनी चायखाना मे बहस
कभी अपने आदमी कभी परायी औरतो के बारे मे
पुस्तकालय रेल-थाना श्मसान अपने अकाल मृत सबधियो के अस्थि फूल
लाने के लिए जुलूस के साथ
चलता हुआ मैं अपने गाव की नदी का नाम भूल जाता हूँ
बालीगज झील के अँधेरे म जकड लेते हैं
मुझे नीले आक्टोपस
शेयर बाजार की चढती उतरती सीढियाँ लहूलुहान कर देती है मेरा चेहरा
योगासन करती हुई देवकन्याएँ फ्री स्कूल-स्ट्रीट म
शहर की सारी बीमारियाँ तोहफे म देती है मुझे बिना मागे
बिना मागे मैं टाइपराइटर मशीन
बन जाता हूँ
डलहौजी स्क्वायर के दफ्तरो का दफ्तरा के मालिको का मुखपात्र
कभी कभी पामू कभी कभी सात्र मगर
अब भी याद आता है लिफ्ट से चढत हुए और
लिफ्ट से उतरत हुए नौकरी की दरख्वास्तें इटरव्यू की कतारें भरत हुए
मेरे दोस्त अपनी पत्निया के सहज सतीत्व पर निर्विकार फिर से
विश्वास करने लगे है
हँसन लगता हूँ मैं लिफ्ट के नीचे
हवडा ब्रिज के नीचे
महारानी विक्टोरिया की महाकाय मूर्ति के नीचे खडा होकर
मैं हँसने लगता हूँ
हँसता हुआ गाने लगता हूँ भारत भाग्य विधाता
जय हे जय हे
मुझे पकड लेती है अपने साथ ले जाती है लालबाजार के सवाल घर म
भारत की शान्तिप्रिय पुलिस
एतिहासिक मूर्तिया का शील भग अपराध है गुरुतर
अपराध है

शहीद स्मारक के नीचे तान हुए नगे हो जाना निपराध रहने के लिए

जिस बेडौल टुकडा मे बाट कर अलग अलग चाहते हैं
भोग करना बनिये सौदागर
इस दुनिया की सबसे नगी सबसे मजबूत औरत का नाम है वियतनाम
उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम
उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया
सफेद अफ्रीका और काला अफ्रीका
पूर्वी जमनी और पश्चिमी जमनी
पाकिस्तान और हिदुस्तान
सफेद अमरीका और काला अमरीका
जॉनसन का अमरीका और एलेन गिन्सबग का अमरीका
इन्दिरा गाधी का हिदुस्तान
और मलय रायचौधुरी का हिदुस्तान
इस दुनिया की प्रत्येक मजबूत औरत नगी और दो टुकडा म बँटी हुई
यह औरत मरी मा और मेरी बीवी मेरा देश और मेरी जिन्दगी
ईसामसीह की आधी देह पेकिंग म
और आधी देह मास्को न्यूयाक म क्रास पर लटकी हुई
और बाकी शहरा म
कवियो की शब्दावली म लिय गय शान्ति के सयुक्त वक्तव्य
हाइड्राजन बम परीक्षण म पख फडफडात हुए
कबूतरो की मौत मर जात हैं
और बाकी शहरो म राजनीतिक वेश्याओ न पीला मटमला अँधेरा फैला रखा
अपनी देह को उजागर करने के लिए
नई दिल्ली म और ढाका-करांची म अब कोई फर्क नही है
कोई फर्क नही है एक गुलाम शहर से दूसरे गुलाम शहर म गोश्त और
किताबें और धम प्रवचन
एक साथ बिकते हैं एक ही कीमता म बिकत है
और गुलाम-शहरा का एकमात्र एकमात्र बच गया है लोकनायक अब
007 जेम्स बाड
चीनी अजदहे के पेट को चीरकर बाहर खीच लाएगा
हमारे देश को चौदह हजार पाँच सौ वगमील पुण्यभूमि वही केवल वही
नायक है 007
नायिका है किसी भी फिल्म नौटकी नाटक हवामहल जनेन्द्र इयान फ्लेमिंग की

वह स्त्री जो हर अध्याय म एक बार
अथवा अतिम अध्याय म सौ बार नगी होती है बहुजनहिताय
और हमारे भाग्य विधाता डॉलर स्टर्लिंग पौंड
क्षेत्रों की भिक्षाटन यात्राओ म क्रमश निर्लज्ज पारगत होत जा रह हैं साहसी
और लॉकहीड 15 प्रति घटे पैंतालीस सौ मील उड़ता है
और एशिया की मादाम नू योरप के जगलो म अपनी लड़की के साथ
खो जाती है
मोराविया की दो औरतें केवल दो औरतें
और परमवीरचक्र स्वीकार करते हुए अपने मार डाले गये पति के शौर्य विक्रम की
बातें करती है कविता त्यागी
और हिदुस्तानी रुपये पर छपी हुई है जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर
और इस तस्वीर की कीमत अभी तक
कुल 36 5 प्रतिशत नीचे गिरी है हम धयवाद करना चाहिए देशी सिंडिकेट
और विदेशी विश्वबैंक को
और रुपय के अवमूल्यन के साथ भारतीय सस्कृति और सुदरता
मूल्यवद्धि करती जा रही है अमरीका-योरप म
बलवत गार्गी आम के पजाबी पेड न्यूयाक मे लगा आते हैं
बीटल्स लडके बजात हैं लगातार
रविशकरी सितार

सोलन के तीसरे पाइट मे अपने गाव की बात शुरू करत हैं फणीश्वरनाथ रेणु
कमली ताजमनी नैना-जोगिन
तीसरी बोतल मे अरुण भारती अपनी फिल्मो का महनायक बन जाता है
फ्रेजर रोड की बडी दुकानो से इत्र की शीशियाँ
और फूलदान खरीदने के लिए
तीसरे ग्लास मे शम्भूनाथ मिश्र कहता है झूठ है साहित्य इतिहास प्रेम साथ चलने के
सारे वादे झूठ हैं सच है केवल गले म लटका हुआ तावीज और वह
मीरा और सजय के पास लौट आता है
अतीत अथवा भविष्य की ये व्याख्याएँ देखने समझने के लिए किन्तु
मैं कभी तीसरे ग्लास तीसरे पाइट तीसरी बोतल की
तीसरी कसम का गुलफाम नही हो पाता हूँ अपने इस गतिहीन वतमान म
होने के बावजूद
नही हो पाने की यह विडम्बना मेरे प्रभु
मेरे ही लिए क्या

मेरे ही लिए क्यों सेन्ट्रल होटल से सेन्ट्रल होटल की दूरी सात समुद्र
चौदह नदियों की दूरी बनती है
क्यों नहीं है मेरे लिए कोई नाम कोई नदी कोई चिड़िया कोई फूल कोई सिद्धांत
कोई दरख्त कोई राजनीतिक दल कोई जंगल
कोई सांप कोई गाव
कोई स्त्री कोई सड़क कोई संगीत कोई नशा कोई प्रेम कोई घृणा
कोई घर कोई आँगन कोई छाँव
वापस लौट जाऊँ मैं जहाँ एक बार फिर से अपनी यात्रा
शुरू करने के लिए
क्यों नहीं है मेरे लिए जीने में अथवा अन्ततः मर जाने में कोई कारण
कोई सत्य कोई न्याय कोई आचरण
जब कि अपने अस्तित्व अपने अनस्तित्व का संपूर्ण निर्णय
मैंने छोड़ देना चाहा था
अपनी उग्रतारा पर कविता से पहले
और मृत्यु से पहले भी छोड़ देना चाहा था शब्दहीन-अर्थहीन जीवन
और मरण का अंकगणित सँभालने के लिए
    श्रीचक्र के प्रस्फुटित कमल पर कामसुद्रा में खड़ी
वह आदिकन्या
मैंने छोड़ देना चाहा था अपना शिथिल शरीर उसके पांवों के समीप
निर्णय के लिए अथवा समर्पण

अब मर जख्मी घुटनों से अपना चेहरा उठा कर मुझे बताओ कब तक मैं
अपने जासूसों अपने पड़ोसियों अपने रक्त में
तीर्थस्थान करते हुए देवताओं से मुक्त हो पाऊँगा या नहीं
मेरी सड़कें मेरी शिराएँ मेरा यह छोटा सा देह नगर फोरसीटर-विज्ञापनों
नकली दवाओं से
दैनिक समाचारपत्रों डी॰ आई॰ आर॰ आम-चुनाव पुलिस कानूनों से
कैंसर संसदीय अधिनायकवाद आकाशवाणी से
ऋणात्मक अर्थतन्त्र ट्रैफिक की लाल हरी पीली बत्तियों से छुटकारा
अवकाश स्वाधीनता विच्छिन्न रहने की
सुविधा
कभी पाएगा या नहीं तुम मुझे बताओ राजकमल चौधरी मुझे बताओ
इस आपरेशन टेबुल पर निर्जीव पड़े हुए
    तुम्हारे शरीर से निकलकर मैं अपने लिखने पढ़ने

सोने रहने के कमरे म
किसी दिन जा पाऊगा या नही
छत से झूलती हुई रेशमी रस्सी म अपने सपनो और अपने नील का
हिडाला झूला टागने के लिए
अपने शरीर से मुक्ति दो मुझे अपने शहर अपनी दुनिया म
चले जाने दो

सत्तर रुपया का यह कमरा मेरा कमरा रहने दिया नही गया था आवाजें
दरवाजे ताडन लगी थी
झनझनाती थी खिडकिया के शीशे तानाशाह रोशनी सचलाइटा की
साइरन की लम्बी जहरीली चीखो के बाद
फौजी स्वर मे हर दफा कोई गरजता है बाहर चले आओ
अभी बम गिरेगा बाहर चले आओ अभी अकाल दुर्भिक्ष पडेगा बाहर
चले आओ अभी फटेगी ज्वालामुखी यह शहर
भस्म हो जाएगा
बाहर चले आओ सुरक्षा खाइया म छिपने के लिए
इस अपाहिज बेशर्म आवाज को मुझसे जोडने के लिए डाकघर अखबार
टेलीफोन दवा की दुकानो मनिआडर
उम्र के गम दिन बचने वाली स्त्रिया आकाशवाणी के
कार्यक्रमा का महाजाल
जिसने बुना है
कोई शिकायत नही है मुझे उससे कोई शिकायत नही है उन लोगा से मुझे
जो ब्लूप्रिंट पर लिख रहे हैं मेरे देश का इतिहास
अथवा मेरे शरीर का आख्यान टेम्प्रेचर चार्ट पर
कोई शिकायत नही
शहर के फुटपाथा पर मैं अफीम और प्रकाशको की तलाश म
घूमता था अकेला और चुपचाप
अपने बेरोजगार दोस्तो के साथ पीकर 50 नम्बर रिक्शेवाली रिफ्यूजी स्त्रिया
विधायको पाठ्यपुस्तक विक्रेताओ सरकारी ठेकेदारा से
झगडता हुआ
गगानदी के घाट पर खडे होकर अस्पताल और अदालत के यात्रियो से लदे
दोमंजिले स्टीमर और सुबह के धुधलके से ऊपर उभरता हुआ
सूरज चुरा ने भागने की योजनाएँ
अपने छोटे भाइया को समझाते रहना घृणा करनी चाहिए

वेतनभोगी शिक्षका विवाहित महिलाओ से
लिखते रहना अपने इलाके के राज्यमन्त्री के लिए भाषण परिवार नियोजन
पचसाला आयोजनो पर लेख
मैं चला जाता था बासघाट-श्मसान अथवा ईसाई ग्रेवयार्ड
किसी सफेद चबूतरे पर रात काटने के लिए
—कोई शिकायत नही थी मुझसे नगर वासियो को पुलिस को
और अखबारनवीसो को
लेकिन
अचानक एक रात ब्लैकआउट म बेहोश इस नगर के आदिम अँधेरे म
मैंने उसे देख लिया शहीद स्मारक के नीचे
रोते हुए वह नगी थी और खून से लथपथ थी और वह
कराहती हुई भागी जा रही थी
गलियो म मरघट मे और राजभवनो म पुकारती हुई मेरा ही नाम बार-बार
गिरती हुई ठोकरें खाती हुई हँसती खिलखिलाती हुई
मैंने उसे देखा उसके कटे हुए दोनो स्तनो को जोडकर बनाया गया है
पृथ्वी का गोलाम्बर
और वह बुझ हुए लैम्प पोस्टो को जलाने की कोशिश म
लहूलुहान हो गयी है मैंने उसे देखा
और बार बार उसके मुह से अपना ही नाम सुन कर मैं अपने कमरे म
भाग आया
मैं अपनी किताबो और अफीम गाजे म बन्द हो गया
वह मेरी मुझी हुई आखो म
मैं उसके स्तनो के गोलाम्बर मे बन्द
अब हम कभी बाहर नही आएँगे न साइरन की चीख सुनकर और नही
राशन खरीदने के लिए
और हम दोनो एक-दूसरे की नीद म सोये हुए थे
जब सर्जिकल अस्पताल की एम्बुलेन्स गाडी हमारे कमरे के सामने आकर
रुक गयी

धीरे धीरे ठडी और सफेद प्रेत-छायाओ से भरने लगा आपरेशन थियेटर
ईश्वर उतरने लगा मेरी अतडियो की चक्करदार सीढ़ियो से नीचे
और नीचे किडनी से ब्लाडर से होकर
मूत्र मार्ग के भीतरी दरवाजे पर लाठी पीटते हुए हथौडे से लगातार दस्तक देता हुआ
एनस्थेसिया की काली चादर से ढका हुआ मेरा चेहरा

मेरा अस्तित्व
अपनी अलौकिक नग्नता म डूब गया है
सत्ताविहीन ज्ञानहीन
समय अब मरे लिए केवल नीलापन है केवल नीलापन शून्य है
शून्य है स्थान काल और पात्र गतिहीन आकारहीन
शिकि फू कु कु फू
शिकि शिकि सोकू जे
कु कु सोकू जे
शिकि
अपनी कविता मे पहले पाठ करता है यह जेन मन्त्र एलेन गिन्सबग
आकार से भिन्न नही है शून्य शून्य से भिन्न नही आकार
आकार ही शून्य है शून्य है साकार
एनस्थेसिया की काली टोपी से ढका हुआ चेहरा गति है
और अगति है
और इतिहास पुस्तक की तरह खुला हुआ अस्तित्व है और नही है
एक ही स्थान एक ही काल एक ही पात्र म
मेरे होने और नही होन की इस अनुभूति ने मुझको
उसके पावो के नीचे
शिव मूर्ति स्थापित कर दिया है समाधिस्थ
अब तुम मेरी पूजा करो उग्रतारा मैं सोया हुआ वतमान हूँ शिव हूँ
तुम्हारा सपूण आत्मनिवेदन
स्वीकारने का एकमात्र मुझको रह गया है अधिकार
तुम्हारे पावो के नीचे होकर भी तुम्हारी जिह्वा म तुम्हारे स्तनो मे
तुम्हारे योनिमाग म
तुम्हारी रक्त नलिकाओ म तुम्हारे हृदयपिंड मे तुम्हारे मांस मज्जा अस्थियो म
तुम्हारे गर्भाशय मे होने का
बार-बार इसी प्रकार होते रहने का अधिकार
मैंने उपलब्ध किया है इस प्रज्ज्वलित श्मसान शीतल हिमखण्ड
आपरेशन-टेबुल पर
कविता मे पहले और मृत्यु से पहले
तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा इष्ट देवता हूँ और कवि हूँ तुम मुझे
जन्म देती हो और मेरे साथ रमण करती हो
तुम मुझे मुक्त करती हो
और मैं तुम्हे मुक्त करता हूँ अपने मरण म

अपनी कविता मे

प्रसग एक

मृत व्यक्ति कोई भी एक मृत व्यक्ति केवल एक मृत व्यक्ति नही है किसी भी प्रकार
सरकारी ट्रासपोट से कुचल दिये गए कुत्ते अथवा तालाब की
सतह पर बिल्ली की फूली हुई
लाश से अधिक कवितामय अधिक सुदर अधिक कामोत्तेजक होता है मृत व्यक्ति
अस्पताल के पलग म सोया हुआ बेहोश देख कर मुझको
एक अपरिचित स्त्री
मातमपुर्सी के लिए आयी हुई यही कहती थी

प्रसग दो

मेरा जन्म हुआ था त्रिशूली पहाड की मन्त्रसिद्ध गुफा म काली-मूर्ति के पाश्व म
सद्य जात छोडकर मुझको चली गयी थी मेरी मा
ग्रहण करने के लिए जलसमाधि
अपनी मृत्यु के कुछ क्षण पूव उसने स्वीकार किया था अपना अपराध
अथच वह वापस आ गयी थी देखकर नीचे घाटी म एकाग्र प्रतीक्षारत
शिशुभक्षी गिद्ध
त्रिशूली गुफा के उस सकेत पथ पर अतएव बिखरी हुई
चट्टानो म अलग अलग
बँटा हुआ है मेरा जीवन यावन खण्डो म कटा हुआ मेरी आखो का आकाश
जिस पथ से भागती हुई मेरी मा के घुटन
पावो की उँगलिया तलुवे पिंडलिया नुकीली चट्टानो से हो गये थे
लहूलुहान   लहू के छीटे
मेरे आकाश के अलग अलग टुकडो को सूयमुखी करते हुए
अब जिन्ह फिर से एक अखण्ड सुमेरु बनाने के लिए मैं एक-एक चट्टान क्रमश
राजेन्द्र सर्जिकल अस्पताल के नीचे बहती हुई
गगानदी मे
फेंकता जा रहा हूँ अपनी मा तीथमयी के आरण्यक सस्मरणो म
आकाश के एक एक टुकड अलकनन्दा म
अतत कविता म
वापस चली आने के कारण ही अनिवाय हो गया था माँ के लिए
वरण कर लेना मत्यु
अन्तत कविता मे उसे जीवित करने के लिए त्रिशूली गुफा म

मन्त्रसिद्ध मैंने जन्मग्रहण किया है

प्रसग तीन

प्रत्येक बार होना है प्रकृति के साथ निद्रामयी अचेतन समाधिस्थ प्रकृति के साथ
बर्बर पैशाची बलात्कार
जब भी मैं रचना चाहता हूँ कोई स्वप्न कोई कविता
रक्त-नलिका से ब्रह्म-नलिका तक कोई यात्रापथ मुझे सभोग करना होता है
विपरीत मुख वलत्कृता होकर ही वह मदालसा
सप्तिध्वजादण्ड धारण करती है अपने षट्चक्र-रथ पर रति व्याकुल होकर उत्तप्त
रचना म योगिनी सहयोगिनी
स्थान काल-पात्र की शारीरिक स्थितिया या अगर शीलभग
करती है मेरी कविता
उसे अब और कुछ नही करना चाहिए

प्रसग-चार

सुरक्षा के मोह म ही सबसे पहले मरता है आदमी अपने शरीर के इर्दगिर्द
दीवारें ऊपर उठाता हुआ
मिट्टी के भिक्षापात्र आगे और आगे और आगे बढाता हुआ गेहूँ
और हथियारबन्द हवाइजहाजो के लिए
केवल मोहविहीन होकर ही जबकि नगा भूखा बीमार
आदमी सुरक्षित होना है

प्रसग पाच

अपनी देह सीमाओ के विषय म इश्वर के प्रति
एक ही प्राथना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की व्यक्तिगत प्राथना
अपनी मुक्ति के लिए—
सगठन और सस्थाओ के विरुद्ध हो जाना अथात शासन-तन्त्र और सेनाओ के
विरुद्ध हो जाना अपनी इकाई बचाने के लिए एक ही प्राथना
वास्तविक जीवन म और कविता म

प्रसग-छह

तेरह हजार वर्ष पहले मेरुदण्ड-पवत की काली चट्टानो से तराश ली गयी
तेरह वर्ष की एक लडकी का नाम है उग्रतारा
जबकि वह उग्र नही है और वह तारा भी नही है मेरे लिए केवल

उभरता है

प्रसग-सात

मुक्ति के विषय मे सोचता हुआ मैं सो गया था बेहोश लेकिन बसे हुए दो पजे
मेरा गला दबाने लगे कोई चीख तक नही निकलेगी
मेरे कण्ठ रध्र से
प्राणरक्षा के लिए अपने शरीर से बाहर निकलकर
मैं सामने दीवार पर नीले कीडे की तरह चिपक गया पलग पर छटपटाती
लाश देखता हुआ
मेरे ही दोनो पजे मेरी गदन दबाये जा रहे हैं इसलिए शरीर से
बाहर निकल कर ही मुक्ति के विषय म
निणय किया जा सकता है

प्रसग-आठ

आदमी को तोडती नही हैं लोकतान्त्रिक पद्धतियाँ केवल पट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे धीरे अपाहिज
धीरे धीरे नपुसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी नागरिक
बना लेती हैं
आदमी को इस लोकतन्त्री ससार स अलग हो जाना चाहिए
चले जाना चाहिए कस्साबो गाँजाखोर साधुओ
भिखमगो अफीमची रडियो की काली और अन्धी दुनियाँ म मसाना मे
अधजली लाशें नोच कर
खाते रहना श्रेयस्कर है जीवित पडोसियो को खा जाने से
हम लोगो को अब शामिल नही रहना है
इस धरती से आदमी को हमेशा के लिए खत्म कर देने की
साजिश मे

पटकथा

धूमिल (वास्तविक नाम सुदामा पाण्डेय)

जन्म 1936, मृत्यु 1975

कृतियाँ

कविता संग्रह संसद से सड़क तक (1972)

कल सुनना मुझे (1977)

प्रस्तुत कविता पटकथा उनके कविता संग्रह 'संसद से सड़क तक' में संकलित है।

[सुनो !
आज मैं तुम्हे सत्य वह बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया मे
भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क
रोटी है।]

पटकथा

जब मैं बाहर आया
मेरे हाथों में
एक कविता थी और दिमाग में
आँतों का एक्स रे ।
वह काला धब्बा
जो कल तक एक शब्द था,
खून के अँधेरे में
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क
बन गया था ।
औरतों के लिए गैर जरूरी होने के बाद
अपनी ऊब का
दूसरा समाधान ढूँढना जरूरी है ।
मैंने सोचा !
क्योंकि शब्द और स्वाद के बीच
अपनी भूख को जिन्दा रखना
जीभ और जाँघ के स्थानिक भूगोल की
वाजिब मजबूरी है ।
मैंने सोचा और संस्कार के
वर्जित इलाकों में
अपनी आदतों का शिकार
होने से पहले ही
बाहर चला आया ।

[सुनो !
आज मैं तुम्हे सत्य वह बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया मे
भूखे आदमी का सबसे बडा तक
रोटी है।]

पटकथा

जब मैं बाहर आया
मेरे हाथों में
एक कविता थी और दिमाग में
आँतों का एक्स रे।
वह काला धब्बा
जो कल तक एक शब्द था,
खून के अँधेरे में
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क
बन गया था।
औरतों के लिए गैर जरूरी होने के बाद
अपनी ऊब का
दूसरा समाधान ढूढना जरूरी है।
मैंने सोचा !
क्योंकि शब्द और स्वाद के बीच
अपनी भूख को जिन्दा रखना
जीभ और जाँघ के स्थानिक भूगोल की
वाजिब मजबूरी है।
मैंने सोचा और संस्कार के
वर्जित इलाकों में
अपनी आदतों का शिकार
होने से पहले ही
बाहर चला आया।

बाहर हवा थी
धूप थी
घास थी
मैंन कहा आजादी ।
मुझे अच्छी तरह याद है—
मैंन यही कहा था
मेरी नस-नस म बिजली
दौड रही थी
उत्साह म
खुद मेरा स्वर
मुझे अजनबी लग रहा था
मैंन कहा—आ जा दी
और दौडता हुआ खेतो की ओर
गया। वहा कतार के कतार
अनाज के अँकुए फूट रहे थे
मैन कहा —जसे कसरत करत हुए
बच्चे। तारा पर
चिडियाँ चहचहा रही थी
मैंने कहा— कासे की बजती हुई घटियाँ
खेत की मेड पार करते हुए
मैंने एक बैल की पीठ थपथपाई
सडक पर जाते हुए आदमी से
उसका नाम पूछा
और कहा—बधाई
घर लौटकर
मैंने सारी बत्तिया जला दी
पुरानी तसवीरो को दीवारा से
उतारकर
उन्ह साफ किया
और फिर उन्हें दीवार पर (उसी जगह)
टाग दिया।
मैंने दरवाजे के बाहर
एक पौधा लगाया और कहा—
वन महोत्सव

और दूर तक
हवा में गरदन उसका उचकाकर
लम्बी-लम्बी सांस खींचता रहा
देर तक महसूस करता रहा —
कि मेरे भीतर
वक्त का सामना करने के लिए
औसतन जवान खून है
मगर, मुझे शांति चाहिए
इसलिए खाली दरबे में
एक जोड़ा कबूतर लाकर डाल दिया
'गूं गुटरगूं गूं गुटरगूं '
और चहकते हुए कहा—
यही मेरी आस्था है
यही मेरा कानून है

इस तरह जो था उसे मैंने
जी भरकर प्यार किया
और जो नही था
उसका इंतजार किया।
मैंने इंतजार किया —
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नही जाएगा।
अब कोई छत बारिश में
नही टपकेगी
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नही पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट घुटकर नही मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नही छीनेगा
कोई किसी को नंगा नही करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है
जैसा पहले हुआ करता था —
सूर्य, हमारा सपना है

मैं इन्तजार करता रहा
इन्तजार करता रहा
इन्तजार करता रहा
जनतन्त्र, त्याग, स्वतन्त्रता
संस्कृति, शान्ति, मनुष्यता
ये सारे शब्द थे
सुनहरे वादे थे
खुशफहम इरादे थे
सुन्दर थे
मौलिक थे
मुखर थे
मैं सुनता रहा
सुनता रहा
सुनता रहा
मतदान होते रहे
मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे
उसी लोकनायक को
बार-बार चुनता रहा
जिसके पास हर शंका और
हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी कि कोट के बटन होल में
महकता हुआ एक फूल
गुलाब का।
वह हमें विश्वशान्ति और पंचशील के सूत्र
समझाता रहा। मैं खुद को
समझाता रहा—'जो मैं चाहता हूँ—
वही होगा। होगा—आज नहीं तो कल
मगर, सब कुछ सही होगा।

भीड़ बढ़ती रही।
चौराहे चौड़े होते रहे।
लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज
खाकर—निरापद भाव से

बच्चे जनते रहे
योजनाएँ चलती रहीं
बन्दूकों के कारखानों में
जूते बनते रहे।
और जब कभी मौसम उतार पर
होता था। हमारा समय
हमें काटता था। हम उत्तेजित होकर
पूछते थे—यह क्या है ?
ऐसा क्यों है ?
फिर बहसें होती थीं
शब्दों के जंगल में
हम एक दूसरे को काटते थे
भाषा की खाई को
जुबान से कम और जूतों से
ज्यादा पाटते थे
कभी वह हारता रहा
कभी हम जीतते रहे
इसी तरह नोक-झोंक चलती रही
दिन बीतते रहे

मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया
मेरा सारा धीरज
युद्ध की आग से पिघलती हुई बर्फ में
बह गया
मैंने देखा कि मैदानों में
नदियों की जगह
मरे हुए साँपों की केंचुलें बिछी हैं
पेड़—
टूटे हुए रडार की तरह खड़े हैं
दूर-दूर तक
कोई मौसम नहीं है
लोग—
घरों के भीतर नंगे हो गये हैं
और बाहर मुर्दे पड़े हैं

विधवाएँ तमगा लूट रही हैं
सधवाएँ मंगल गा रही हैं
वन महोत्सव से लौटी हुई कार्यप्रणालियाँ
अकाल का लंगर चला रही हैं
जगह जगह तख्तियाँ लटक रही हैं—
'यह श्मशान है यहाँ की तसवीर लेना
सख्त मना है।'
फिर भी इस उजाड़ में
कहीं-कहीं घास का हरा होना
कितना डरावना है
मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का
सबसे बड़ा बौद्ध मठ
बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है
अखबार के मटमैले हाशिये पर
लेटे हुए एक तटस्थ और कोढ़ी देवता का
शान्तिवाद, नाम है
यह मेरा देश है
यह मेरा देश है
हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक
फैला हुआ
जली हुई मिट्टी का ढेर है
जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब—
नफरत है।
साजिश है।
अंधेर है।
यह मेरा देश है
और यह मेरे देश की जनता है
जनता क्या है?
एक शब्द सिर्फ एक शब्द है
कुहरा और कीचड़ और काँच से
बना हुआ ।
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठंड के लिए
अपनी पीठ पर

ऊन की फसल ढो रही है।
एक पेड़ है
जो ढलान पर
हर आती जाती हवा की जुबान में
हाँऽऽ हाँऽऽ करता है
क्योंकि अपनी हरियाली से
डरता है।
गाँवों में गंदे पनालों से लेकर
शहर के शिवालों तक फैली हुई
'कथाकलि' की एक अमूर्त मुद्रा है
यह जनता ।
जनतन्त्र में
उसकी श्रद्धा
अटूट है
उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
ऐसा जनतन्त्र है जिसमें
जिन्दा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक-जैसी छूट है
कैसी विडम्बना है
कैसा झूठ
दरअसल, अपने यहाँ जनतन्त्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है

हर तरफ धुआँ है
हर तरफ कुहासा है
जो दाँतों और दलदलों का दलाल है
वही देशभक्त है
अंधकार में सुरक्षित होने का नाम है—
तटस्थता। यहाँ
कायरता के चेहरे पर
सबसे ज्यादा रक्त है।

जिसके पास थाली है
हर भूखा आदमी
उसके लिए सबसे भद्दी —
गाली है

हर तरफ कुआं है
हर तरफ खाईं है
यहां, सिर्फ, वह आदमी, देश के करीब है
जो या तो मूर्ख है
या फिर गरीब है

मैं सोचता रहा,
और घूमता रहा—
टूटे हुए पुलों के नीचे
वीरान सड़कों पर। आंखों के
अंधे रेगिस्तानों में।
फटे हुए पालों की अधूरी जल यात्राओं में
टूटी हुई चीजों के ढेर में
मैं खोई हुई आजादी का अर्थ
ढूढता रहा।
अपनी पसलियों के नीचे। अस्पतालों के
बिस्तरों पर। नुमाइशों में
बाजारों में। गांवों में
जंगलों में। पहाड़ों पर
देश के इस छोर से उस छोर तक
उसी लोक चेतना को
बार बार टेरता रहा
जो मुझे दोबारा जी सके
जो मुझे शांति दे और
मेरे भीतर बाहर का जहर
खुद पीस दे

—और तभी सुलग उठा पश्चिमी सीमांत
ध्वस्त ध्वस्त ध्वांत ध्वांत

मैं दोबारा चौखटे पर खड़ा हो गया
जो चेहरा आत्महीनता की स्वीकृति में
कन्धे पर लुढ़क रहा था,
किसी झनझनाते हुए चाकू की तरह
खुलकर, कड़ा हो गया ।
अचानक, अपने-आप में ज़िन्दा होने की
यह घटना
इस देश की परम्परा की —
एक बेमिसाल कड़ी थी
लेकिन इसे साहस मत कहो ।
दरअसल, यह पुट्ठों तक चोट खाई हुई
गाय की घृणा थी
(ज़िन्दा रहने की पुरज़ोर कोशिश)
जो उस आदमखोर की हविस से
बड़ी थी ।

मगर उसके तुरन्त बाद
मुझे झेलनी पड़ी थी — सबसे बड़ी ट्रेजेडी
अपने इतिहास की
जब दुनिया के स्याह और सफ़ेद चेहरों ने
विस्मय से देखा कि ताशकन्द में
समझौते की सफ़ेद चादर के नीचे
एक शान्ति-यात्री की लाश थी
और अब यह किसी पौराणिक कथा के
उपसंहार की तरह है कि इस देश में
रोशनी उन पहाड़ों से आई थी
जहाँ मेरे पड़ोसी ने मात
खाई थी

मगर फिर मैं वहीं चला गया
अपने जनून के अँधेरे में
फूहड़ इरादों के हाथों
छला गया ।
वहाँ बंजर मैदान

पपाला की नुमायश कर रहे थे
गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग
भूखा मर रहे थे
मैंने महसूस किया कि मैं वक्त के
एक शमनाक दौर से गुजर रहा हूँ
अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई
किसी का झुलसा हुआ चेहरा नही देखता है
अब न तो कोई किसी का खाली पेट
देखता है, न थरथराती हुई टाँगें
और न ढला हुआ 'सूयहीन कधा' देखता है
हर आदमी, सिफ, अपना धंधा देखता है
सबने भाईचारा भुला दिया है
आत्मा की सरलता को मारकर
मतलब के अंधेरे म (एक राष्ट्रीय मुहावरे की बगल मे)
सुला दिया है।
सहानुभूति और प्यार
अब ऐसा छलावा है जिसके जरिये
एक आदमी दूसरे को, अकेले —
अंधेरे म ले जाता है और
उसकी पीठ मे छुरा भोंक देता है
ठीक उस मोची की तरह जो चौक से
गुजरते हुए देहाती को
प्यार से बुलाता है और मरम्मत के काम पर
रबर के तल्ले मे
लोहे की तीन दजन फुल्लिया
ठोक देता है और उसके नही नही के बावजूद
डपटकर पैसा वसूलता है
गरज यह कि अपराध
अपने यहा एक ऐसा सदाबहार फूल है
जो आत्मीयता की खाद पर
लाल भडक फूलता है
मैंने देखा कि इस जनतांत्रिक जगल म
हर तरफ हत्याओं के नीचे से निकलते हैं
हरे हरे हाथ और पेडा पर

पत्तों की जुबान बनकर लटक आते हैं
व ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे सुनकर
नागरिकता की गोधूलि में
घर लौटते हुए मुसाफिर
अपना रास्ता भटक जाते हैं

उन्होंने किसी चीज़ को
सही जगह नहीं रहने दिया है
न संज्ञा
न विशेषण
न सर्वनाम
एक समूचा और सही वाक्य
टूटकर
बि ख र गया है
उनका व्याकरण इस देश की
शिराओं में छिपे हुए कारकों का
हत्यारा है
उनकी सख्त पकड़ के नीचे
भूख से मरा हुआ आदमी
इस मौसम का
सबसे दिलचस्प विज्ञापन है और गाय
सबसे सटीक नारा है
वे खेतों में भूख और शहरों में
अफवाहों के पुलिंदे फेंकते हैं
देश और धर्म और नैतिकता की
दुहाई देकर
कुछ लोगों की सुविधा
दूसरों की 'हाय' पर सेंकते हैं
वे जिसकी पीठ ठोंकते हैं —
उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है
वे मुस्कराते हैं और
दूसरे की आँख में झपटती हुई प्रतिहिंसा
करवट बदलकर सो जाती है
मैं देखता रहा—

देखता रहा—
हर तरफ ऊब थी
संशय था
नफरत थी
मगर हर आदमी अपनी ज़रूरतों के आगे
असहाय था। उसमें
सारी चीज़ों को नये सिरे से बदलने की
बेचैनी थी, रोष था,
लेकिन उसका गुस्सा
एक तथ्यहीन मिश्रण था
आग और आँसू और हाय का।

इस तरह एक दिन—
जब मैं घूमते घूमते थक चुका था
मेरे खून में एक काली आँधी—
दौड़ लगा रही थी
मेरी असफलताओं में सोये हुए
पहली हारों को
झकझोरकर जगा रही थी
अचानक, नींद की अगणित परतों में
डूबे हुए मैंने देखा
कि मेरी उदासी के अँधेरे में
एक हमशक्ल खड़ा है
मैं। उसने पूछा—तुम कौन हो?
यहाँ क्यों आए हो?

मुझे छुओ।
मुझे जिओ। मेरे साथ चलो
मेरा यकीन करो। इस दलदल से
बाहर निकलो।
सुनो।
तुम चाहे जिसे चुनो
मगर इसे नहीं। इसे बदलो।'
मुझे लगा—आवाज़
जैसे किसी जलते हुए कुएँ से
आ रही है
एक अजीब सी प्यार भरी गुर्राहट
जैसे कोई मादा भेड़िया
अपने छौने को दूध पिला रही है और
साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है
मेरा सारा जिस्म थरथरा रहा था
उसकी आवाज़ में
असंख्य नर्कों की घृणा भरी थी
वह एक एक शब्द चबा चबाकर
बोल रहा था। मगर उसकी आँख
गुस्से में भी हरी थी
वह कह रहा था—
'तुम्हारी आँखों के चकनाचूर आईना में
वक्त की बदरंग छायाएँ उल्टी कर रही हैं
और तुम पेड़ों की छाल गिनकर
भविष्य का कार्यक्रम तैयार कर रहे हो
तुम एक ऐसी ज़िन्दगी से गुज़र रहे हो
जिसमें न कोई तुक है
न सुख है
तुम अपनी शापित परछाईं से टकराकर
रास्ते में रुक गए हो
तुम जो हर चीज़
अपने दाँतों के नीचे
खाने के आदी हो
चाहे वह सपना हो अथवा आज़ादी हो

अचानक, इस तरह, क्यो चुप गए हो
वह क्या है जिसने तुम्हे
ववरो मे सामने अदव से
रहना सिखलाया है ?
क्या यह विश्वास की कमी है
जो तुम्हारी भलमनसाहत बन गई है
या कि शम
अब तुम्हारी सहूलियत बन गई है
नही— सरलता की तरफ इस तरह
मत दौडो
उसम भूख और मदिर की रोशनी का
रिश्ता है। वह बनिये की पूजी का
आधार है
मैं बार बार कहता हूँ कि इस उलझी हुई—
दुनिया म
आसानी मे समझ मे आनेवाली चीज
सिफ दीवार है।
और यह दीवार अब तुम्हारी आदत का
हिस्सा बन गई है
इसे झटक कर अलग करो
अपनी आदतो मे
फूलो की जगह पत्थर भरो
मासूमियत के हर तकाजे को
ठोकर मार दो
अब वक्त आ गया है कि तुम उठो
और अपनी ऊब को आकार दो।

सुनो !
आज मैं तुम्हे सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई
छोटी है। इस दुनिया म
भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क
रोटी है
मगर तुम्हारी भूख और भाषा म

यदि सही दूरी नही है
तो तुम अपने-आपको आदमी मत कहो
क्योंकि पशुता—
सिर्फ पूछ होने की मजबूरी नही है
वह आदमी को भी वही ले जाती है
जहाँ भूख
सबसे पहले भाषा को खाती है
वक्त सिर्फ उसका चेहरा बिगाडता है
जो अपने चेहरे की राख
दूसरो की रुमाल से झाडता है
जो अपना हाथ
मैला होने से डरता है
वह एक नही ग्यारह कायरो की
मौत मरता है
और सुनो ! नफरत और रोशनी
सिर्फ उसके हिस्से की चीज है
जिसे जगल के हाशिये पर
जीने की तमीज है
इसलिए उठो और अपने भीतर
सोए हुए जगल को
आवाज दो
उसे जगाओ और देखो—
कि तुम अकेले नही हो
और न किसी के मुहताज हो
लाखो है जो तुम्हारे इतजार मे खडे हैं
वहाँ चलो। उनका साथ दो
और इस तिलस्म का जादू उतारने मे
उनकी मदद करो और साबित करो
कि ये सारी चीजें अधी हो गई हैं।
जिनमे तुम शरीक नही हो ।
मैं पूरी तत्परता से उसे सुन रहा था

एक के बाद दूसरा
दूसरे के बाद तीसरा

तीसरे के बाद चौथा
चौथे के बाद पाचवा
यानी कि एक के बाद दूसरा विकल्प
चुन रहा था
मगर मैं हिचक रहा था
क्योंकि मेरे पास
कुल जमा थोडी सुविधाएँ थी
जो मेरी सीमाएँ थी
यद्यपि यह सही है कि मैं
कोई ठडा आदमी नही हूँ
मुझ मे भी आग—है
मगर वह
भभककर बाहर नही आती
क्योंकि उसके चारो तरफ चक्कर काटता हुआ
एक 'पूजीवादी' दिमाग है
जो परिवर्तन तो चाहता है
मगर आहिस्ता-आहिस्ता
कुछ इस तरह कि चीजो की शालीनता
बनी रहे।
कुछ इस तरह कि काख भी ढँकी रहे
और विरोध मे उठे हुए हाथ की
मुट्ठी भी तनी रहे ।
और यही वजह है कि बात
फसले की हद तक
आते-आते रुक जाती है
क्योंकि हर बार
चन्द टुच्ची सुविधाओ की लालच के सामने
अभियोग की भाषा चुक जाती है

मैं खुद को कुरेद रहा था
अपने यहाँ उन तमाम लोगों की असफलताओ को
खोज रहा था जो मेरे नजदीक थे।
इस तरह मासूम और सीधे विचारो पर
जमी हुई काई और उगी हुई घास को

खरोच रहा था, नाच रहा था
पूरे समाज की सीवन उधेड़ते हुए
मैंने आदमी के भीतर की मल
देख ली थी। मेरा सिर
भिन्ना रहा था
मेरा हृदय भारी था
मेरा शरीर इस बुरी तरह थका था कि मैं
अपनी तरफ घूरते हुए उस चेहरे से
थोड़ी देर के लिए
बचना चाह रहा था
जो अपनी पैनी आँखों से
मेरी बेवसी और मेरा उथलापन
थाह रहा था
प्रस्तावित भीड़ में
शरीक होने के लिए
अभी मैंने कोई निर्णय नहीं लिया था
अचानक, उसने मेरा हाथ पकड़कर
खींच लिया और मैं
जेब में जूतों का टोकन और दिमाग में
ताजे अखबार की कतरन लिए हुए
धड़ाम से—
चौथे आम चुनाव की सीढ़ियों से फिसलकर
मत पेटियों के

गड़गच्च अँधेरे में गिर पड़ा
नींद के भीतर यह दूसरी नींद है
और मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है
सिर्फ एक शोर है
जिसमें कानों के पर्दे फटे जा रहे हैं
शासन सुरक्षा रोजगार शिक्षा
राष्ट्रधर्म देशहित हिंसा अहिंसा
सैन्यशक्ति देशभक्ति आजादी वीसा
वाद बिरादरी भूख भीख भाषा
शांति क्रांति, शीतयुद्ध एटम बम सीमा

एकता सीढ़ियाँ साहित्यिक पीढ़ियाँ निराशा
झाँय झाँय, खाँय खाँय, हाय-हाय, साँय-साँय

मैंने कानो मे ठूस ली हैं अँगुलियाँ
और अधेरे मे गाड दी है
आँखों की रोशनी।
सब-कुछ अब धीरे धीरे खुलने लगा है
मत-वर्षा के इस दादुर शोर मे
मैंने देखा हर तरफ
रग बिरगे झडे फहरा रहे हैं
गिरगिट की तरह रग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे है
वे एक-दूसरे से दाँता किलकिल कर रहे हैं
एक दूसरे को दुर दुर बिल बिल कर रहे हैं
हर तरफ तरह-तरह के जन्तु हैं
श्रीमान किन्तु हैं
मिस्टर परन्तु हैं
कुछ रोगी है
कुछ भोगी हैं
कुछ हिजडे हैं
कुछ जोगी हैं
तिजोरियो के
प्रशिक्षित दलाल हैं
आँखो के अधे हैं
घर के कगाल है
गूगे हैं
बहरे हैं
उथले है गहरे है
गिरते हुए लोग हैं
अकडते हुए लोग है
भागते हुए लोग हैं
पकडते हुए लोग हैं
गरज यह कि हर तरह के लोग हैं
एक दूसरे से नफरत करते हुए व

इस बात पर सहमत हैं कि इस देश म
असख्य रोग हैं
और उनका एकमात्र इलाज—
चुनाव है।
लेकिन मुझे लगा कि एक विशाल दलदल के किनारे
बहुत बडा अधमरा पशु पडा हुआ है
उसकी नाभि म एक सडा हुआ घाव है
जिससे लगातार—भयानक बदबूदार मवाद
बह रहा है
उसम जाति और धम और सम्प्रदाय और
पेशा और पूजी के असख्य कीडे
किलबिला रहे हैं और अन्धकार म
डूबी हुई पृथ्वी
(पता नही किस अनहोनी की प्रतीक्षा म)
इस भीषण सडांध को चुपचाप सह रही है
मगर आपस मे नफरत करते हुए व लोग
इस बात पर सहमत हैं कि
'चुनाव' ही सही इलाज है
क्योकि बुरे और बुरे के बीच से
किसी हद तक 'कम से-कम बुरे को' चुनते हुए
न उन्ह मलाल है, न भय है
न लाज है
दरअसल, उन्ह एक मौका मिला है
और इसी बहान
वे अपन पडोसी को पराजित कर रहे हैं
मैंन देखा कि हर तरफ
मूढता की हरी हरी घास लहरा रही है
जिसे कुछ जगली पशु
खूद रहे है
लीद रहे हैं
चर रहे हैं

मैंन ऊब और गुस्से का
गलत मुहरा के नीचे स गुजरते हुए देखा

मैंने अहिंसा को
एक सत्तारूढ शब्द का गला काटते हुए देखा
मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें
भरते हुए देखा
मैंने विवेक को
चापलूसो के तलवे चाटते हुए देखा ।

मैं यह सब देख ही रहा था एक नया रेला आया।
उन्मत्त लोगो का बर्बर जलूस। वे किसी आदमी
को हाथो पर गठरी की तरह उछाल रहे थे
उसे एक दूसरे से छीन रहे थे। उसे घसीट रहे थे।
चूम रहे थे। पीट रहे थे। गालिया दे रहे थे।
गले से लगा रहे थे। उसकी प्रशसा के गीत
गा रहे थे। उस पर अनगिनत झडे फहरा रहे थे।
उसकी जीभ बाहर लटक रही थी। उसकी आखे बन्द
थी। उसका चेहरा खून और आसू से तर था। 'मूर्खो!
यह क्या कर रहे हो।' मैं चिल्लाया। और तभी किसी
ने उसे मेरी ओर उछाल दिया। अरे! यह कैसे हुआ?
मैं हतप्रभ सा खडा था
और मेरा हमशक्ल
मेरे पैरो के पास
मूर्च्छित-सा
पडा था

दुख और भय से एक झुरझुरी लेकर
मैं उस पर झुक गया
किन्तु बीच ही मे रुक गया
उसका हाथ ऊपर उठा था
खून और आसू से तर चेहरा
मुस्कुराया था। उसकी आखो का हरापन
उसकी आवाज मे उतर आया था—
'दुखी मत हो। यही मेरी नियति है।
मैं हिन्दुस्तान हूँ। जब भी मैंने
नहें उजाले से जोडा है

उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है।
इसी तरह तोड़ा है।
मगर समय गवाह है
कि मेरी बेचैनी के आगे भी राह है'

मैंने सुना। वह आहिस्ता-आहिस्ता कह रहा है
जैसे किसी जले हुए जंगल में
पानी का एक ठंडा सोता बह रहा है
घास की ताजगी भरी
ऐसी आवाज है
जो न किसी से खुश है, न नाराज है।
'भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है
संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है
फिर भी वे अपने हैं
अपने हैं
अपने हैं
जीवित भविष्य के सुन्दरतम सपने हैं
नहीं—यह मेरे लिए दुखी होने का समय
नहीं है। अपने लोगों की घृणा के
इस महोत्सव में
मैं शापित निश्चय हूँ
मुझे किसी से भय नहीं है।

तुम मेरी चिन्ता मत करो। उनके साथ
चलो। इससे पहले कि वे
गलत हाथों के हथियार हों
इससे पहले कि वे नारों और इश्तिहारों से
काले बाजार हों
उनसे मिलो। उन्हें बदलो।
नहीं—भीड़ के खिलाफ रुकना
एक खूनी विचार है
क्योंकि हर ठहरा हुआ आदमी
इस हिंसक भीड़ का
अंधा शिकार है।

तुम मेरी चिंता मत करो।
मैं हर वक्त सिर्फ एक चेहरा नहीं हूँ
जहाँ वर्तमान
अपने शिकारी कुत्ते उतारता है
अक्सर मैं मिट्टी का हरकत करता हुआ
वह टुकड़ा हूँ
जो आदमी की शिराओं में
बहते हुए खून को
उसके सही नाम से पुकारता है
इसलिए मैं कहता हूँ जाओ और
देखो कि वे लोग

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि एक धक्के ने
मुझे दूर फेंक दिया। इससे पहले कि मैं गिरता
किन्हीं मजबूत हाथों ने मुझे टेक लिया।
अचानक भीड़ से निकलकर एक प्रशिक्षित दलाल
मेरी देह में समा गया। दूसरा मेरे हाथों में
एक पर्ची थमा गया। तीसरे ने मुझे एक मुहर देकर
पर्दे के पीछे ढकेल दिया।
भय और अनिश्चय के दुहरे दबाव में
पता नहीं कब और कैसे और कहाँ—
कितने नामों और चिह्नों और शब्दों को
काटते हुए मैं चीख पड़ा—
हत्यारा ! हत्यारा !! हत्यारा !!!

[मुझे ठीक ठीक याद नहीं है। मैंने यह किसको कहा था। शायद अपने आपको
शायद उस हमशक्ल को (जिसने खुद को हिंदुस्तान कहा था) शायद उस दलाल
को मगर मुझे ठीक ठीक याद नहीं है]

मेरी नींद टूट चुकी थी
मेरा पूरा जिस्म पसीने में
सराबोर था। मेरे आसपास से
तरह तरह के लोग गुजर रहे थे।
हर तरफ हलचल थी, शोर था।

कुछ लोग कह रहे थे कि इन दिनों
एक खास परिवर्तन हुआ है
जनता जगी है। सब
प्रभु की माया है
एक लम्बे इन्तजार के बाद
चीजों का असली चेहरा
उजाले में आया है
और मैं चुपचाप सुनता हूँ
हाँ शायद—
मैंने भी अपने भीतर
(कहीं बहुत गहरे)
'कुछ जलता हुआ-सा' छुआ है
लेकिन मैं जानता हूँ कि जो कुछ हुआ है
नींद में हुआ है
और तब से आज तक
नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए
मैंने कई रातें जागकर गुजार दी हैं
हफ्तों पर हफ्ते तह किये हैं
अपनी परेशानी के
निमम अकेले और बेहद अनमने क्षण
जिये हैं।
और हरबार मुझे लगा है कि कहीं
कोई खास फर्क नहीं है
जिन्दगी उसी पुराने ढर्रे पर चल रही है
जिसके पीछे कोई तर्क नहीं है

हाँ वह सही है कि इन दिनों
कुछ अर्जियाँ मजूर हुई हैं
कुछ तबादले हुए हैं
कल तक जो नहले थे
आज
दहले हुए हैं

हाँ, यह सही है कि इन दिनों

मन्त्री जब प्रजा के सामने आता है
तो पहले से
कुछ ज्यादा मुस्कराता है
नये-नये वादे करता है
और यह सब सिर्फ़ क्षास में
सामने होने की मजबूरी है
वर्ना उस भलेमानुस को
यह भी पता नहीं है कि विधान सभा भवन
और अपने निजी बिस्तर के बीच
कितने जूतों की दूरी है।

हाँ, यह सही है कि इन दिनों चीजों के
भाव कुछ चढ़ गये हैं। अखबारों के
शीर्षक दिलचस्प हैं नये हैं।
मंदी की मार से
पट पड़ी हुई चीजें, बाजार में
सहसा उछल गई हैं
हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ़ टोपियाँ बदल गई हैं
और—
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल उछलकर
अपनी जगह बदल रहे हैं
चढ़ी हुई नदी में
भरी हुई नाव में
हर तरफ़ विरोधी विचारों का
दलदल है
सतहों पर हलचल है
नये नये नारे हैं
भाषण में जोश है
पानी ही पानी है
पर
की
च
ड़

खामोश है

मैं रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का
एक पुर्जा गरम होकर
अलग छिटक गया है और
ठंडा होते ही
फिर कुर्सी से चिपक गया है
उसमें न हया है
न दया है

नहीं—अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैंने एक एक को
परख लिया है।
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार । मैंने जिसकी पूछ
उठाई है उसको मादा
पाया है
वे सबके सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं।
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।
यानि कि—
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।

भूख और भूख की आड़ में
चबाई गई चीज़ों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूढ़ना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद

मालगोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।

यहाँ जनता एक गाड़ी है

एक ही संविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'दया' है
और भूख में
तनी हुई मुट्ठी का नाम
नक्सलबाड़ी है

मुझसे कहा गया कि संसद
देश की धड़कन को
प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है
जनता को
जनता के विचारों का
नैतिक समर्पण है
लेकिन क्या यह सच है ?
या यह सच है कि
अपने यहाँ संसद—
तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है
और यदि यह सच नहीं है
तो यहाँ एक ईमानदार आदमी को
अपनी ईमानदारी का
मलाल क्यों है ?
जिसने सत्य कह दिया है
उसका बुरा हाल क्यों है ?

मैं अक्सर अपने आपसे सवाल
करता हूँ जिसका मेरे पास

कोई उत्तर नहीं है
और आज तक—
नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए
मैंने कई रातें जागकर
गुजार दी हैं
हफ्ता पर हफ्ते तय किए हैं। अब के
निमम अकेले और बेहद अनमने क्षण
जिये हैं।
मेरे सामने वही चिरपरिचित अन्धकार है
संशय की अनिश्चयग्रस्त ठण्डी मुद्राएँ हैं
हर तरफ
शब्दभेदी सन्नाटा है।
दरिद्र की व्यथा की तरह
उचाट और कूँथता हुआ। घृणा में
डूबा हुआ सारा का सारा देश
पहले की तरह आज भी
मेरा कारागार है।

आज या कल या सौ बरस बाद

अमृता भारती

जन्म सन् 1937, नजीबाबाद (उ० प्र०)

कृतियाँ

कविता संग्रह मैं तट पर हूँ (1971)
आज या कल या सौ बरस बाद (1975)
मिट्टी पर साथ-साथ (1976)

सम्पादन 'नवजीवन पथ' साप्ताहिक तथा 'पश्यन्ती'

पता श्री अरविन्द आश्रम, अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-1100016

प्रस्तुत लम्बी कविता 'आज या कल या सौ बरस बाद' पुस्तक रूप में पहली बार 1975 में प्रकाशित हुई थी।

[आगे भी क्या यही होगा
कि छोटे आदमी की तस्वीर
और भी छोटी होती चली जायेगी
और चौखटा
चिटखता रहेगा
उसकी बढ़ती हुई खामोशी के आतंक से ?]

आज या कल या सौ बरस बाद

कब तक
इतिहास
ऐसे ही लिखा जाता रहेगा
कब तक आदमी
उनके तलवों की रंगत बखानता रहेगा
जो तब भी राजा थे
और अब भी राजा हैं।

झुर्रियों में पड़ी हुई कहानियाँ
वक्त की
वहीं रह गयीं
काले घोड़े का सवार
और उड़ती हुई पताका
मैली पगड़ी की लपेट में खो गये।

कब तक चर्चा होती रहेगी
उनकी
जो बड़े युद्धों के नायक होकर भी लड़ाई में जिन्दा रहे
और अदना आदमी
इस तरह गिना जाता रहा
'दस हजार
बीस हजार या तीस हजार

राम आये'

अब आदमी को ईश्वर नही गढता
अपनी शक्ल म
या ईश्वर ही गढता है
दूसरी शक्ल म ।

चौराहा पर
लगी हुई मूर्तियाँ
ज्यादातर उन्ही की है
जिन्होने कोई लडाई नही
तमगा जीता था ।

धरती की खामाशी म
उलटी पडी
छोटे आदमी की तस्वीर
सीधी होत वक्त और भी खामोश नजर आयी ।

आगे भी क्या यही होगा ?

राजधानी के किनारे
उडती हुई गद
ऊँटो के शरीर की तरह बडी होती रहेगी
और रगिस्तान
अपनी निरक्षरता को
पूरे देश की जडो मे डालेगा ?

आगे भी क्या यही होगा
कि छोटे आदमी की तस्वीर
और भी छोटी होती चली जायगी
और चौखटा
चिटकता रहगा
उसकी बढती हुई खामाशी के आतक से ?

अपने ही देश मे
पीछे लौटते हुए
मुझे वे लोग याद आते हैं
जो राजा भी थे और फकीर भी
और उनका एक हाथ तब भी मिट्टी पर होता था
जब वे पानी या आग पर चलते थे।

राजाओं की शक्ला मे
फकीरों के नक्श गलते चले गये
और इतिहास सोने के पानी से लिखा जाने लगा
धीरे धीरे वे सब बातें पुराण हो गयी
और पुराण
कपोल कल्पना।

अब आदमी की चमड़ी का
जूता पहनने वाले लोग राजा है।
अहिंसक जूतो का व्यापार बढ रहा है
आदमी मारा नही जा रहा
अपनी चमडी के नीचे
खुद ही मर रहा है।

अपने ही देश मे या
दुनिया म
पीछे लौटते हुए या
आगे चलते हुए—
मुझे एक चीज और याद भी आती है
वह मटमैली किताब
जिसे आदमी ने
आदमी के लिये नही लिखा था

वह मटमैली किताब
जिसके सीले हुए पन्नो पर
करोडो लोगो की भूख के गडढे थे

मिट्टी के पास बैठा हुआ आदमी
उस किताब के साथ ही दफनाया जाता रहा
वीरान सुनसानों म
और कारनामे
सुनहरे अक्षरों मे
सुरक्षित होते रहे ।

लेकिन पृथिवी अन्दर भी पलती है
मीलों नीचे
अपनी ही कोख के अन्दर
और न्याय हर बार ऊपर ही नही होता
मिट्टी की निममता
बहुत कुछ खाती है
वे कीड़े भी
जिन्हे बड़ा आदमी पालता है
मटमैली किताब का इतिहास खाने के लिये

कहीं भी तो कुछ नही है ऐसा

कहीं भी तो कुछ नही है एसा
जो बस्तियों को साबुत रख सके
बारिश मे दब गयी
बस्तियों के ऊपर
आधी रात ।

सुबह होन पर भी रोशनी नही होगी

सुबह होने पर भी रोशनी नही होगी
उनके घरा और आसमान के बीच एक पूरी दुनिया है
हर रोज कुछ और बटी होती हुई ।

इमारतो को बनानवाल
उनके खुरदरे हाथ

और भी खुरदरे होते रहे ।
उन्होंने सिर्फ काम के घंटे गिने थे
रोटी खरीदते वक्त
अपने घर की वह धूप नहीं
जिसे उन्होंने
इमारतों की जड़ों में रखा था ।

वे सिर्फ रोटी माँगते हैं या कपड़ा
या तीज-त्यौहारों के लिए कुछ—
— कुछ ऐसा
जिससे बीवी बच्चे पूरे साल
उनके अपने छप्पर के नीचे रह सकें
उन्होंने रोशनी के पैसे नहीं माँगे
जिसे उन्होंने श्रम के साथ-साथ बेचा था

कहीं भी तो कुछ नहीं है ऐसा
जो बड़े घरों की रोशनियों को
बेनकाब कर दे
काँच से बाहर—
आग जो जलती रहे, जलती रहे
निर्मम ऊँचाइयों को राख करती हुई
उनके खुरदरे हाथों के करीब ।

जड़ों के पास उठी वह धूप
कैसी निर्ममता से
उन इमारतों में ही ऊँची होकर फैलती चली गयी
और वे देखते रहे ।

पर कहीं कुछ है ऐसा
कहीं कोई
जो अपने माथे पर बँधा
पुराना कपड़ा खोल रहा है
मिट्टी और सूरज को
साथ-साथ तोल रहा है ।

उसे मैं क्या दूंगी
उस आदमी के खुले माथे को ?
उसके पुराने कपड़े को
मुट्ठी में भीचते वक्त
लहूलुहान हुई हथेली या
हथेली का आशीर्वाद—

उस आदमी को क्या दूंगी
जिसके साथ
मैं अजनबी की तरह
बरसों से या
शुरू से ही चलती रही ?

माथे का कपड़ा खुलते ही
मैं उसके करीब हो गयी थी।
इतने करीब
कि वह
एक हाथ में मिट्टी और सूरज
और दूसरे हाथ में
मिले हुए चन्द सिक्कों को लेकर
चौराहे पर खड़ा हो गया था
और हँसती हुई भीड़
अचानक संजीदा होती चली गयी थी।

मैं उसे क्या दूंगी
लहूलुहान हथेली
जिसे वह सूर्यमुखी की तरह
अपने माथे पर बाँधेगा या
नगर-बाहर का छूटा हुआ अंधकार
जिसे चौराहे पर लाते ही
वह मार दिया जायगा
वह आदमी
जिसके आस-पास बढ़ी हो रही भीड़
अब चलने लगी है

उन चन्द सिक्कों के खिलाफ

वे उसके रक्त के ढेर को जमाकर
एक प्रतिमा बनायेंगे
वे खरीदार लोग, फिर
उस लाल पत्थर की आग पर
धीरे धीरे अपने तहखानों का
काला पानी सौंप देंगे।

एक के बाद एक
जिबह होता चला जायगा आदमी
चौराहे पर खड़ा होनेवाला हर आदमी
जिसके साथ मैं
बरसों से या
शुरू से ही
अजनबी की तरह चलती रही।

और माथे के खुले हुए पुराने कपड़े से
मेरी हथेली
लहूलुहान होती रहेगी
एक के बाद एक
मेरी सारी ही हथेलियाँ।

मैं उसे क्या दूंगी
उसके खुले माथे को
सूर्यमुखी का आशीर्वाद
या
वह रंग
जो लाल पत्थर की आग पर
किसी भी पानी को चढ़ने नहीं देता
काले या सफेद या पीले
किसी भी पानी को
मैं उसे क्या दूंगी
उसके साथ

बार बार जिबह होती हुई ?

बतन माजते हुए
उसने अपनी उम्र बतायी थी
यही होगी कोई दस, बारह या
पन्द्रह साल'।

आकाश विद्या जाननेवाला यह देश
भी नही जानता
उसकी उम्र
जो गोद से निकलते ही
सडकों पर आया था
और तबसे
धूप और छाया मे
समय का अन्दाज करते हुए
सडक के किनारे चल रहा है।

उसके लिये
सुबह सिर्फ सुबह होती है
और शाम सिर्फ शाम ही
वह दिनो को महीने मे
और महीनो को साल मे
कैसे जोडे
जबकि आज और कल और परसो
हमशक्ल है उसके लिये
सुई दर सुई एक चाल मे चलते हुए।
वह यह भी कह देता
साठ साल
तो भी क्या फर्क पडता
आकाशविद्या जाननेवाले इस देश को
जो सिर्फ उनकी उम्र जानता है
जो अभी तक भारतमाता की गोद मे चढे हैं
कधे तक उठे हुए

और हर साल
साठ या सत्तर या अस्सी या
नब्बे मोमदिये बुझाते हैं
विलायती मिठाई पर।

तारीखें 'चीयर्स' के साथ ही बदलती हैं
उठे हुए गिलासों के बीच।

चाय की प्याली भाप म
पिघलती हुई ठंड
बार बार जम जाती है यहा
उसके मैले कपड़ो के करीब
उसकी उगलियो के सुन्न नीलेपन म—
नही
और भी आगे
उसकी सुबहो के करीब
उसकी रातो के करीब
जब तारीख बदलने का समय होता है।

उसके चले जाने के बाद
उसकी आखो की
छूटी हुई चमक म
मैं उसका जन्मदिन ढूढती हूँ
सुबह और रात का वह क्षण
जब दिन को कोई नाम दिया जाता है।
उसके लिये
कलेण्डर बनाने की सारी योजनाओ के बावजूद
ये सारी तारीखें हाथ से निकल गयी
जिन पर मैंने लाल स्याही स
किसी न किसी त्योहार का निशान बनाया था।

रक्त म चमकती हुई छाया
उन तारीखो की
और उसकी आखो के करीब

उठता हुआ शोर
सब धीरे धीरे बैठ गये।

दिन यों ही फाड़े जाते रहे
एक के बाद एक
और लाल तारीखों पर
अपनी फटी एड़ियों के काले निशान रखता
वह चलता रहा
धूप में दरक गयी
सड़क के साथ सा।

पता नहीं
कब बड़ा होगा आदमी
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़ा होगा आदमी ?

इंच दर इंच
नीचे आ रहे हैं दिन
पहाड़ों के कंधों से
इंच दर इंच
पानी बर्फ बन रहा है
घर अन्दर होते जा रहे हैं।

पता नहीं कब
बड़े होकर जलेंगे चूल्हे
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़े होकर जलेंगे चूल्हे

अंधेरे की आंच से
अब रोटियाँ नहीं सिकतीं
अंधेरे की आँच से
अब तम्बाकू नहीं महकता

यह ख्याल सिर्फ एक क्षण को ही आता है
कभी हम भी भूखे थे
या अब वे भूखे हैं—
भूख से आदमी मर भी जाता है।

मर भी जाता है?
हाँ, मर भी जाता है
उस सबसे बड़ी भूख से
जो पेट में लगती है
और आंखों से निकलती है
हाँ, उस भूख से आदमी मर भी जाता है।

फिर क्या होगा?
कल फिर क्या होगा
नाचघर या चायघर या शराबघर में?
इंच दर इंच
छोटा होता चला जायेगा आदमी
हँसता हुआ पीता हुआ बहकता हुआ।

और परसों?
परसों और भी छोटा होगा आदमी
पत्थरों वाली इमारत में बैठकर
दलीलें देता हुआ
'भूख से नहीं, वे
रक्त की कमी से मरे हैं।'

पता नहीं
कब बड़े होंगे श्मशान
पता नहीं कब
सचमुच ही
बड़े होंगे श्मशान

और वह चौराहा
जो सकरी गलियों में चला गया

पता नहीं कब लौटेगा
पता नहीं कब लौटेगा
उनके साथ
जो सचमुच ही बड़े हो रहे हैं
और गिरे हुए लोगों का
छोटे ही सही, लेकिन
उनके पैर दे रहे हैं।

आकाश अब नीचे नहीं झुकता
न तो उस आदमी के सिर पर
जो अपने अन्दर ही
बहुत दूर चला गया
न उस आदमी के करीब
जो अपने से बाहर खड़ा है।

आकाश की धूप अब कीड़े नहीं खाती
आकाश की धूप अब कीच नहीं सुखाती
और न तो सुबह के वक्त ही
रात की मैली चादर धोती है।

कीड़े बड़े होते जा रहे हैं
और दलदलें गहरी
अंधेरे का पता नहीं,
कब अन्त होगा ?

वे सब धीरे धीरे अभ्यस्त हो गए
कीड़ों के
कीच के
अंधकार के
यहां तक कि उनकी मौत के भी
जिनके बालों से अभी तक
मां के जिस्म की गंध आती है।

अब फ़र्क सिर्फ़ बुझे हुए चूल्हों से पड़ता है
या अन्दर जलने वाली आग से।
लड़ाई इन दोनों के बीच है
इन दो आगों के बीच
जो बाहर जलती नहीं
और अन्दर बुझती नहीं।

इस छोटे से युद्ध की योजना
उन्होंने नहीं बनायी
जिन्हें लड़ना पड़ रहा है
और इसमें जीत हार कुछ नहीं होती
बस लड़ने वाला आदमी बुझता रहता है
और रोशनी एक तरफ़ इकट्ठी होती रहती है।

इन सबकी लड़ाई को
मैं कौन सा शस्त्र दूँ
जो इनका पलड़ा बदल दे
और इनके सीधे कदमों को
ऊँट चाल भर दे।

शतरंज में ये बड़े मोहरे
अपनी जगह से हिलते तक नहीं
उस आखिरी दाँव तक
जब तक कि सब रास्ते साफ़ नहीं हो जाते।
यह दो बादशाहों या
दो वज़ीरों या दो हाथी घोड़ा-ऊँटों
की लड़ाई भी नहीं है
सिर्फ़ पैदल मर रहे हैं—
अँधेरी छतों के नीचे
घुसे वे लोग
जो रोशनी में आते ही
सिपाही की तरह दीखने लगे थे।

मैं इस ददनाक खेल को
कौन सी शह दू
कि वे छोटे छोटे मासूम सिपाही
पीछे
बडे घरो की तरफ मुह कर दौड पडें
हाथी घोडो से अलग
सिफ उन बडे मोहरो की तरफ
जो योद्धा नही खिलाडी हैं—
खेल की रफ्तार से अलग
ऊँची खिडकिया मे बैठे हुए।
मेरी कमर मे पडी
उनके कटे हुए हाथो की झालर
अब मुझे युद्ध म नगा नही होने देती
और उनके कटे हुए सिरो की माला
मेरी मण्डनप्रियता का
अम्लान रखती है।

ये वे लोग नही
जिन्होंने किसी भूमि या सुन्दर स्त्री या
सफेद कलश के लिये
युद्ध रचना की थी।
ये तो अधेरी छतो के नीचे
बुझ रहे चेहरे हैं
जो रोशनी मे आते ही
सिपाही की तरह दिखने लगे थे।

ये अदना लोग
चूल्हे की सक्षिप्त आग म
पेट की बडी आग झाकते हुए

अचानक इनके शरीर के वे हिस्से
खून की तरह खौलने लगे थे
जहाँ अरसे मे पानी भर गया था।

वह कौन सी आग थी
जिसने इन्हें गर्म किया था इतनी दूर तक ?

'वह कौन सी आग है'
इस सवाल के लिये परेशान होना
एक और पूतला है
पत्थरावाली इमारत में बैठे हुए लोगों की
जबकि सब तरफ आग ही आग है।
पेट की
छाती की
और धुएं की तरह बल खाकर फैल रहे
माथे की
सब तरफ आग ही आग है।

शहरी गलियों में गया हुआ चौराहा
अभी तक नहीं लौटा
बाहर पहरा है
सिर्फ बाहर पहरा है।

अन्दर वे नहीं जायेंगे
लोहे के टोप और जूते पहनकर भी
अन्दर नहीं जायेंगे
तंग गलियों में खतरा ही खतरा है।

लेकिन ये भी वही लोग हैं
वही मामूली लोग
जिनके शरीर के बहुत बड़े हिस्से में
पानी भर गया है
और जो चूल्हे की सन्निप्त आग में
पेट की बहुत बड़ी आग झाकने के लिये
पहरा दे रहे हैं
अपनी ही आग का पहरा
ये अनजान लोग।

पत्थरों वाली इमारत में बैठा हुआ आदमी
और राजपथ
क्या अब तक सुरक्षित है ?

वे अब तक नहीं लौटे
वे सचमुच ही बड़े लोग
जिन्होंने अपने कटे हुए
हाथों की चालर से
मुझे नंगा होने से बचाया था ।
और अपने कटे हुए सिरों की माला से
मेरे वक्ष को सजाया था
वे अभी तक नहीं लौटे
जबकि मैं उनके हाथ लौटा चुकी हूँ
और कटे हुए सिर भी ।

मेरे नग्न होते ही
काल नंगा हो गया
निराभरण क्रूर

और पानी वाले हर हिस्से में आग
बढ़ रही है
कृपाण की तरह तेज, फुर्तीली आग ।

उनके लिए
मैं अपने सब हाथों को जोड़ूँगी—
मेरे ये दो हाथ
जो खाने पहनने का काम करते हैं—
इनके अलावा अपने सब हाथों को
और अपने उन चेहरों को भी
जो देवालय से बाहर होते ही
मेरे एक चेहरे में घुस गए थे ।

इस बार लड़ाई

मंदिर से नहीं
सड़क पर होगी
मेरे उस स्वभाव के साथ ही
जो देवालय से बाहर होते ही
कालचक्र की कीलों में
चिपक गया था

इस बार
वह भी आहत हो सकता है
जो बहुत पहले
मेरे केशों को छूने की कोशिश करने वाले शत्रु के प्रति
अग्निशूल बन गया था

यह इतना छोटा युद्ध
बुझे हुए चूल्हों
और जलते हुए पेटों का

इसके बाद और बहुत से युद्ध
आदमी की ऊँचाई के लिए
मुझे लड़ने हैं
बहुत से बड़े युद्ध
सड़क से मंदिर तक
आदमी से ईश्वर तक ।

उपनगर मे वापसी

बलदेव वशी

जन्म 1938, मुलतान (पश्चिमी पाकिस्तान)

कृतिया

कविता सग्रह दशक दीर्घा से (1970), उपनगर मे वापसी (1974)
अधेरे के बावजूद (1978)
'विचार कविता की भूमिका' म सपादन सहयोग
काला इतिहास (कविता-सकलन) समकालीन कविता विचार
कविता (सपादन) प्रकाश्य आत्मदान (खड काव्य)।

पता 2941/13 रणजीत नगर, नई दिल्ली 8

प्रस्तुत लम्बी कविता 'उपनगर मे वापसी (1974) कवि के
इसी शीर्षक के कविता-सग्रह मे सकलित है।

[मेन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा वडवडाता है
उप-स्थितियो से लेकर उप-दशाओ तक फैले तन्त्र मे झलते
वनैले वत्तमान
विकृत
घुलते हुए
फिर अपनी भीगी कमीज को निचाउ कर
फटकारता हुआ प्राय चीखते हुए कहता है
कहा हो, यार ?
उबकाई आ रही है
मूर्ख !
जल्दी करो !
दृश्य बदलो ! !]

उपनगर में वापसी

चलते चलते
'तुम कहाँ हो ?'
—किसी न पूछा
बिना उत्तर दिए मैं अपन पीछे छिप गया
उसके सामने एक अधेड युवक का लटका हुआ चेहरा था
जो गाधी शताब्दी फिल्म की तरह जग बुझ रहा था
मैं अपने भीतर था (भी)
और नही (भी)

उसन गहराई से देखा
घणा से मुह सिकोडा और कहा—
'आदमी अपने पीछे छिपा युद्ध हो गया है'
— लगा कि उसने लोकतन्त्र मे किसी का नाम बुदबुदाया है
मैंने चेहरे का पोस्टर उखाडकर सामने रख लिया
उसने उत्सुकता दिखाई
फैली आँखा मे मैं था
पोस्टर था और सामने रखी
राख की पुडिया

वह हँसा !
उसकी हँसी का रहस्य
कही हिरोशिमा था, कही नागासाकी

कही वियतनाम और कही भारत
दरअसल वह हँसी पहले जमती हुई मोम मे बदल गई
फिर धीर धीरे पुराने पलस्तर की तरह भुरभुराने लगी
फिर मात्र श्रमहीनता का एहसास

शोर की घनी परतो पर यह जो
गम लकीरा से लिखा है चौराहा पर—
'अपने बाये चलो
यह आदमी के निकट पडता हैं उबलती नदी का सहवर्ती भाग
कि तु अफसोस है
आदमी सही नारा भी नही हुआ
अब किसी का नही लगती
कविता से चोट
या बददुआ
हवा मे पबद हो गयी है चीख
ठड ने सबको अकेला कर दिया है यहा कितना !
कितना !!

यह पक्की सडक है
जनपथ
जो सीधे चलकर
अब बायें मुडी है
यही एक बच्चे के हाथो
ऋतुएँ खो गयी थी
तब से भयभीत वह
घर ही नही लौटा
किताबो अलग फेंक
कामकाजी हो गया

यह उपनगर 1950 म बसा। बसाया गया था। है। होगा।
यही पुराना रेलवे फाटक है आगे स्टेशन
जब देखो ट्रैफिक बद
और प्रतीक्षा मे काँटा चुका है
किसी चलती फिल्म का घिसा हिस्सा

झटके से रुका है
आगे दायीं ओर यह पहला ब्लाक है
यहाँ एक कुआँ था
अब !
नहीं है !
कुएँ के पास पीने के पानी की टकी थी
लडते झगडते लोगो की कतारे थी
अब !
पानी के साथ
लडाइयाँ
घर घर म बँट गयी हैं
इन इक्कीस वर्षों म
बिलकुल बदल गया है यहा का इतिहास
—कहाँ गयी भूमि को यकसार करने वाली
सतह पर देखती आखें ?
धरती की पपडियाँ छीलते बुलडोजर
मजदूरा के घूमते समूह
धूल उडाती बीडी बेचने वाली गाडिया
बरसात के गाने

अब मद्धिम रोशनिया म पलता
धीरे धीरे बढता
नकल म जीता हुआ उपनगर
'पूरा नगर हो रहा है पटठा
—वही 'सैलर',
वही केज—नये रेस्ट्रा
गम सिसकारियो को ओढ़
भरपूर
रगो—गधो—उत्तेजनाओ म एकाकार होते
धडकते पिडो की सिम्फनी—
सिर से नीचे
आधुनिक
वाद्य म
सुर मिला चिल्लाती धौंकनियाँ

इसी ब्लाक को ले लो
यहां जसवन्तू गले म फदा डाल झूल गया था मेरी दोपहरी
बाप अभी दुकान पर बैठा है हर समय मोमबत्तियाँ जलाये
हर मौसम में पखा झुलाता पाखाने म प्राय चिल्लाते हुए काखता
हुलहुलाता खोखल अब गिरा !
अब गिरा !

उसके द्वार पर गुलमुहर फूला है डहडहा !
हहहा !
किन्तु उसके पास अब कोई रग चलकर नही आता
—मौसम के साथ समय भी मर गया है देहरी पर
यही नगर की आधारशिला है
जिसके निकट अब भी
नेहरू युग का पागल गठरी सा पडा है
योजनाओ के धमाके से उसी का
सतुलन उडा है
उसके निकट पडे हैं
बिजली के तार
पिछले अधड म उडी
मकानो की सीमेंटी चद्दरो की छतें

पूरे उपनगर मे वही एक स्वतत्र है
हवा की तरह
बे मतलब घूमता पागल
जब देखो यहा
वहा
कुछ बो रहा है
नुमायशी रगो की तरह सूखता है
धीरे
धीरे
सिकुडती हैं नस
और फिर देखते-देखते
कुछ ठोस सम / मर / मर हो रहा है
आस-पास

घना होकर
गिर
रहा
है
नीचे

कभी वह भूख की तरह
हँसकर
सफेदी की तरह
गंभीर हो जाता है
अब, जबकि सभी पर्याय बिखर गये हैं
पागल नागरिक की कोटि म आता है
उसके जिस्म पर
लाल और सफेद चींटियां
रेंग रही हैं एक साथ
क्या नागरिक होना
यों निरीह होना है ?
बाजू, टाग या शरीर का कोई हिस्सा खोकर हँसना
हकलाना
या सोना है ?

कोई भी नगर ऐसा नही होता
और जब भीतर आग लगी हो
चुपचाप नही सोना !

आज ऐसा सम्भव है कही ?
— वाह ! इसका मतलब गलत ही ठीक है !
तुम, कम-अज़ कम मर सकते हो।'
— मैं बहस म नही पडता'
मुझे जान दो
तुम्हारा जो मन कहे करो
यहाँ कौन पूछता है
अब वायदों और दायरा म बात करना निहायत मूर्खता है
और हा ! तुमने गजलो के साथ

कठपुतली का नाच कभी देखा है ?
मरना उतना ही झूठ हो गया है
अब हँसी न आए तो
बगला में मढक दबाकर हँसो
और गम्म हो तो
कुहनी के नीचे गाव तकिया

यहाँ एक बिना ब्याहा का लडका था। अब
जवान है—भगतू कुबडा
पसलियो म समा गए हैं कधे
और पीठ पर उभर आयी है हड्डिया की गाँठ
पैरो से रोटी पकडने की वजह से
अधिक मुडा है   बरसातो मे
टीन की छत्ता सा बजा है
और गमियो मे
भूसे सा दूर दूर तक उडा है
इस समय वह धुआधार भाषणो म
कामा सा व्यथ है
किसी बम काड म झुलसे गिलगिले चेहरे सा वह उभरता है
थरथराहट के बाद
थोडी देर काप कर
किसी जोहड म डूबता है
इस नगर के एक ओर रेल पटरिया है
दूसरी ओर बरसाती नाला
मध्य मे छितराये
अपनी ही विष्ठा मे धँसी भसो के बाडे।

श्मशान तक फैल गया है उपनगर
जिसमे खप गये हैं खेत खलिहान
अवध आबादी और पानीदार कुएँ
कँटीले टढे मेढे झाड, किसानी गीत
अब तारकोल—इटें—रोडो—सीमेंट का
शतरजी खेल है शेप
चौपड पर प्राय झुके हुए बूढे

फिसलती गोटियाँ

इसके नीचे कुओ मे दफन है युवा मन
स्थान और समय के एक बिंदु पर
खडे हो इन्होने भरी है और कुओ की गहराई
—आवारा पशुओ के शव
सक्रामक रोगियो के वस्त्र
कूडा बीनती लडकियाँ
बलात्कारा हत्याओ के चिह्न
पिछवाडे स फेंके लोथडे
इन के चारा ओर भौंभरी लेते
बचपन की धूला और भूलो म
समान थे । साबुत । छोटे
बडे
होते होते
एक की आँखें नही रही
दूसरे की जीभ
तीसरे का धोखे की तरह बठ गया कधा
चौथे गहरे बिंधे पक्षी सा चक्रवात मे फँसा
गाते हुए रोता है
घुन-खायी पसलिया निकल जाने पर
झुकता है कधा । झुके कधे वाला आदमी
कसा हाता है ?

कभी कभी उपनगर के किनारो को गिराती है बरसाती [नाले की धार
वैसे कुछ भी अनपक्षित घटने पर यहा
अब नही होती हैरानी
बस व्यक्ति अपने ही ऊपर
गिरता है औंधा । पूरा का पूरा
और सँभलते देखते
पानी की एक और शक्ल
मिट जाती है
आस पास अब भी गडडे है
जहा बरसाता म पानी भरता है

घास उगती है पशु चरते ह
—जहा अब भी कोई शमदार डूब मरता है

उप-चुनाव । सब कही फली उत्तेजना
धमनिया म मरोड लेता खन नारा म गलता
व्यक्ति खामखाह जलता है । यह ऐसी आग है
जो सफेदी पर खिलाती है लाल गुलाब—बेतरतीब छीटे
और दिन रात किसी अज्ञात यातना सी जलती है
कोई मशाल
नफरत की तरह
उठते बगूलो मे उडते लोग
किरकिरी बन आखो मे भरत है
कीच बन बहते हैं

इ ही उप चुनावा मे भटकती हैं बतिया
गदी होती है दीवारें
युद्धरत है चिल्लाते पोस्टरो की सस्कृति

घाव पर स खुरण्ड छीलता भगतू हैरान है
'भगतू अपग है
'कहा है उसका वोट ?'
और भगतू एक पर्ची का खिलौना बना
आधे में सफेद
आधे मे काला कर
खेलता है धूप छांह
दिन रात
उसे कौन समझाए
पर्ची दिन में पडती है
गिनती रात में
और हर समय घोषणाएँ

वस्तुआ का अस्तित्व आपस में टकराकर आज
नही पदा करता कोई तीसरा अस्तित्व
बल्कि टूटने की भोंडी आवाजें

खालीपन को जाहिली से भर रही हैं
आपसी नगेपन की खूबसूरती पर
बे-तरह मर रही है। दायें से
बायें
चल गयी है हवा (कहने को)
पर मुख्य चौराहे पर बच्चो को लिए खडा भिखारी
अब भी
दायें हाथ से मागता है भीख
अवधि मध्यातर के इन चुनावो म फिर
धूल धक्कड मे लिपटी
गाव देहातो को रौदकर आयी कारें
पहले ही की रफ्तार म गुजर गयी हैं
यह जरूर हुआ है कि उपनगर का माहौल
पहले से कुछ गम हो गया है और औसत आदमी
उतना ही बे गम

अँधेरे म जब भी
कुछ इधर स
उधर सरकता है
रोशनी म
छद्म का नया रूप
गिरते गिरते सभलता है

आज फिर कोई निगल गया है एक झाँसा
किसी तरह
उतार ले गया है
नीचे
गले के
जहर, जहर को काट रहा है

मक्कारी और साहूकारी मे संतुलन साधे
विश्वास और विमोह की मधि रेखाओ पर झूलाता
पाले और गर्मी के नीचे
बडा होता आदमी

शमकी चीज है
चुनाव की नही !

उप समय के ताप म पिघलकर वहत इस आदमी की
सप दृष्टि फाडकर देखो
ठडे सिक्को की छाप व्यवस्था से गडी है
--यहा लोहे की छडा मे बदल रही हैं इमारतें
गारे म मजदूर
नफरत म बच्चे
इटा म कारीगर
कमीशन मे जमादार
अधिकारी घूसखोरी मे
मालिक कोठी म, ठाठ मे
ठुस-मल म सब दफन हैं
व्यवस्था से
अटे-सटे
दिन रात
खट खट चो ची तोड फोड
और यो ऊपर उठ रहा है उपनगर

जहा जहा उपनगर ने सिर उठाया है
औसत आदमी ने वहीं धचका खाया है

उपचारो की व्यथता मे शव की तरह सक्रिय लोग
रात को डरावना बनाती वीरान आवाजें
आकाश बुहारती एराड्रम की हरी लाल रोशनियाँ
देहात सोये हैं पेट मे घुटने गाडे
गडड मडड । बे-होश
लकदक बस्तियो की अव्यवस्थित आबादी
अध चेतन मनसूबा की तरह
अमीबा सा फलाता है नकली पाव
उपनगर
उप चेतना की कदराओ म फलता घुलता
कितना घिनौना हो गया है जीव

अवसर-अवकाश म गलकर वहते हैं अग
सुविधा की घात मे
लट् लकार
दुविधा मे ग्रस्त है पूरा व्याकरण

उप-जीव्य ही सच है। अब
बद हवास शून्य मे
टगी है धुएँ की छत
न टूटेगी
न उठेगी ऊपर
अँगीठियो से छीजता धुआ
नमी मे जकडा तना है
रेंगता हुआ चलता है समानान्तर
यह हवाई छाता
यही पर बना है
अकाल और युद्ध म देगा काम
जैसे बीमारी म उप राम

चलती सडक के बीच मिला है भगत्
उखडा उखडा। घबराया। जिम्मेदार।
साठ के कोण पर गिरा चेहरा
भटकी कातर आँखें। अपनी ही भूमिका मे गुल होता
विदूषक, पलके झपकाता शम मे डूब भरता हुआ कहता है
'कही नौकरी दिला दो'
बदहवासी म घूमते बत्तीस वर्षों की आवारगी
छाती म सीधे पड़ी जोरदार घूसो की मार
उपनगर को बालिश्तो मे मापने की थकान
सूने गलियारो म घूमती हवा की हाय हाय
एक विन्दु पर मिलकर चटखते हैं सब
एक साथ
घडघडाती रेल की पटरियो के नीचे से निकल कर
मैं पूछता हूँ उसका अभिप्राय
धचकने लगती हैं मेरी पसलियाँ
दो लम्बे बाँसो पर धिगलियाँ लपेट कर

बनाया गया हौआ
जिस पर सिर की जगह पुरानी हँडिया टिकी हो औंधी
पटरी पर ठीक मेरे सामने खडा है वह
हवा मे झूलता
आधी मे टूटा तना
वेदना की तरल रेखा
अपनी ही धुरी पर लगातार घूमता
अनुभव खण्ड

हर घटना के लिए पदो
और छोटे धधो म तरक्की पर है
उपनगर। गँवारू सुरा म रामनाम गाते मँगते
हाथा की उँगलियो म टूटे घडे की टिकुलिया बजाते
गुजर जाते हैं पीछे
पहाडी की ओर
जिसकी सरहद्द पर बिकता है ट्रक की टयूबा मे आया
अवैध ठर्रा। इन वर्षों इससे जुडा सारा व्यवसाय तत्र
पनपा है खूब। दरअसल गये चुनावो मे
जहा भी गिरी हैं हैलिकॉप्टर की पखियाँ
वही लहलहाई है कुकुरमुत्ता की फसल।
नागरिक के धन और निर्दोष के तन पर
अधिकार की तरह सजग
रात भर गश्त पर तैनात पुलिस
मस्त है चौक म एकत्र
हिजडो के गानो मे

एक भाव है
जो ऐंठते हुए खुलता है और फलने के बाद
किलकारी मार टूट कर बिखर जाता है। उसे
सँभाले हुए जनतत्र की तरह हर वस्तु को दोहराता
जागता है बहुरूपिया
पिचकाता है आँख मौसम।

दूसरा ना

नगा करने के क्रम से गुजरते
स्वय नगा होते (हुए)
मौसम को वक्ष पर झेलना । कई जगह पटक कर उठाना
साथ चलाना और रास्ते की रेत मे पैरो का धँसते रहना
फिसलते इरादो दलदल से निकालकर आगे रखते ही पैर
चारो ओर फूटते शोर को
पीठ देकर भागना सम्भव तो होता है
पर रोशनी
चटख रगो म भरती है चमत्कार
सहती नही गदापन
मनहूसियत ।

यह एक जरूरी बात है
जिसम खा रहा है उपनगर का भूगोल
चीखते हैं वीराने—'हमारा हिसाब करो'
हवा जगह बे जगह घूमती है आवारा । इस आवारा हवा मे फँसा
मौसमो का पीछा करता समझदार हो गया है यह बच्चा
जो उदासी म रहता है । लम्बी सडको पर छलाँगता
धक्का देने वाली दहशत को मुट्ठिया म भीचे
ढलानो पर उतरता
धुआँ उडाता
क्या आप पहचानते हैं इसे
ईर्ष्या बन बरसते हुए सूध रहा है सबकी देह म घुटती
परिचित मिटटी की गध
बदरग बातो के सिलसिले की तरह वह
टूट गया है
जगह-जगह
लम्बा सवाद
शायद यह आँधी की धूल क साथ कही से आया है
विस्थापित ! फालतू मनसूबो म बधा
गट्ठर-सा गिरा है
छोटी-सी परिधि म गूजता है शोर
—'दौडो ! पकडो ! देखो !

—'वह किसका बच्चा है ?'

तुमने भँवर म फँसे डूबते आदमी को देखा है ?
ठीक ऐसे ही जीवन को लेकर कुचक्र म फँसे हैं यहाँ के मतदाता
—बँधी टागो से उचक उचक चलते है
जूझते
पैरो के नीचे की गली हवा पर खडे
भीतर की हड्डियो मे कैद
घर लौटते सपने के
पदचिह्नो को दोहराते
अपने ही साथो की स्मृति म चलते
नक्शो से बँधे घूमते घेरो म
आगे-पीछे टूटते

दायी ओर नये रेलवे फाटक पर बन रहा है पुल
रात भर चलता है काम ! कापता रहता है उपनगर
असाध्य रोगो की सनी
चाबुक की नोक पर कुलबुलाता
अधेरे म उठा अमरू
गीदड-सा रोता है सारी रात
उसकी कराहट सीध आकाश म उठे गडरो से टकराकर
लुढकती है नीचे
और चोट खाकर कुनुभाती हुई
घर घर घूमती
द्वार खटखटाती है
फिर बीमार अमरू के पास लौट
दूसरी बार के लिए पायताने रुकी थरथराती है
पास ही अमरू का परिवार सोया है
जिसमे सामकौर है। दो जवान बेटियाँ हैं
कमाऊ ! एक पुत्र है जो दौरे पर रहता है
और इस नुक्कड म वह स्वय पडा है
आवाज मे मरने का एहसास !

माँ की आँखें जा रही हैं

छिन रहा है दुनिया का रूप रग
अब उसे याद नही रहती सध्या की आरती
दीया-बाती। बल्कि उभर आती है
उछलकर
पैशाचिक हँसी के साथ एक लम्बी रात
तेज़ी स मिचमिचाती आँखो म चमकती गोधूलि

जमीन तक झुक आयी है अगूर की बेल
गभीरता म तन आया शाम का झुटपुटा
गीलेपन म डूबती है रोज
जाते दिन की पीली कुम्हलाई रोशनी की आभा
अपनी इन्ही आँखो के आगे असमय ही मरते
अजुरी मे कितने फूलो को विसर्जित करते
देखी है उसन बहती गगा की धार
इन लहरो पर बदरग होते रक्त कमलो का लेखा
आज किस किस को सुनाए
अन्धे युग म घुल रही है माँ!

मेरे ही रक्त से जुडा
हड्डियो के शिकजे म जकडा
'मांसपेशीय क्षरता' म बिधा
तेरह वष का बच्चा है एक
दहलीज म पडा
चौकी पर बैठ रेंगता है
बाहर भीतर
निरुद्देश्य
'इसे मरते दस वष लगेंगे'—डाक्टर का कहना है
इच इच कटना
दलदल मे धँसते रहना। स्तब्ध!
क्या वास्तव म यह मरना है?
या अपराध उगलवाती
जोडो पर पडी मार को सहना है निर्दोष?

थककर आया उसका बाप

शाम को घर नहीं रहता
तिल तिल मरते बच्चे की आँखों में भरकर भटकता है
ताश के पत्तों में बँटता
लम्बे कशों में खिंचता
बीडी के धुएँ में उडता हुआ लौटता है दोबारा
जबकि घर के बतनों को चाटकर
गली के मोड पर मिलते हैं ऊँची आवाज में रोते कुत्ते
—और वह साजिश की तरह घुसता है भीतर

—'बाहर मत झाँको'
—'भीतर मत झाँको'
फडफडाती है वजनाएँ
—'तुम्हारी आखें कच्ची हैं
बाहर आँधी है और भीतर कुएँ की खुदाई'
उन्होंने डरकर सिर भीतर कर लिया। यहीं से शुरु होता है
सीलन, उमस और क्षरता का इतिहास

—'क्या कहा, कुएँ में झाकने से क्या होता है ?'
बाहर से लौटा आदमी पहले अपने पर ही टूटता है
बाज की तरह झपट्टा मार
फिर पहचानता है घर बार
खौफ को निकाल
बाएँ हाथ से
दायीं जेब में भरता है
रास्ते को
नाक पर टिका कर
भागता है सीधा

उमस में घुटता है आकाश
पीठ पीछे उमडते चले आ रहे हैं बादल। उत्तर में
सरकारी कोष से सहायतार्थ पत्र लिखवाता भगतू
कहता है जल्दी करो
खराब होने वाला है मौसम'
उसकी पहुँच में हर बार उग आती है बरसात

या आँधी या आलस्य
उसकी आँखों में सूखी नदी का कछार है
करवत काशी गाते सूरदास की मुद्रा
और भौंहों पर टिकी मेन रोड
जिस पर चिलचिलाती हैं दुर्घटना की सम्भावनाएँ
पत्र को मेज पर टिका
टाँग उठा
उँगलियों में पेन थाम
भगतू पैरों से करता है हस्ताक्षर
और मेरी ओर देखकर हँसता है साभिप्राय
कितनी तेजी से बदल रहा है व्याकरण

या उपनगर है मेरा देश
भूगोल पर स्थित
रात में सोया पीपल
(भूलता जागता उन्माद)
अँधेरे उजाले के मिश्रण में
निचुड़कर बहता
पसीजता
अँधड़ और बारिश के बाद की करुण स्थितियाँ
धुलती हुई
भीगी
धुली धुली

बड़ी
छोटी
फिर उससे छोटी डिब्बियों को खोलते
थाइम वप बाद
निकला है एक ओराग उटाग
उछलकर पीपल की टहनी पर बैठ
सलाम बजा कहता है—'सोनार बाग्ला'
गोली की 'धायं' के साथ छितरा जाती हैं चिड़ियाँ
उपनगर में फैली है बदहवासी

अब हवाएँ एक ही ओर भाग रही हैं
नाले म आयी है बाढ
किनारे टूट रह हैं

आजकल भगतू ट्रांजिस्टर को पैरो म पकड
दिन मे सुनता है गाने
और रात को समाचार
यो केवल वही दीखता है लाचार
बाकी सब व्यस्त ।

पत्थर मे गडती कील देखी है ?
और जब कोई स्वय पर ही कील सा गडने लगे ?
इस बार मुझे निणय लेते देर नही लगी
देह पर लगे सभी टाँके काट
समझौते की तरह देह को तोड
मैं युद्ध मे शामिल हो गया
लकवा मारी टागा को झुलाता
पीडा को देह मे जगह जगह खासता
क्रूरता मे चलता हुआ
खून थूकता
अपन को कितना मार सकता है कोई
मैं देख रहा था

बद कमरे मे देह की बुहारनी को उलटा पढते
म अकेला नही था
मेरे साथ मेरा परिवेश और वस्तुएँ
उसी क्रम मे नि सत्व हो रही थी
बहुत देर तक पीछा करने पर
बार बार सँभलती
खूख्वार लडखडाती
अँधेरे मे भटकती
थक कर गिर पडी थी एक चीख

मन रोड पर चलता हुआ पागल सहसा बडबडाता है

- 'उप स्थितियों से ले कर उप दशाओं तक फँसे तत्र म झूलते
बनैले वतमान
विकृत
घुलते हुए'

फिर अपनी भीगी कमीज को निचोड कर
फटकारता हुआ प्राय चीखते हुए कहता है
—कहाँ हो, यार ?
उबकाई आ रही है
भूख !
जल्दी करो !
दृश्य बदलो !!

घास का घराना

मणि मधुकर
जन्म 1942, राजस्थान।

कृतियां

कविता संग्रह खंड खंड पाखंड पर्व, पगफेरा, घास का घराना तथा अन्य कविताएं
उपन्यास सफेद मेमने
कहानी संग्रह हवा में अकेले, भरत मुनि के बाद
नाटक दुलारी बाई, रस गंधर्व, सराय बुलबुल

पता 8/14, राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली- 60

प्रस्तुत कविता 'घास का घराना' मणि मधुकर के कविता संग्रह 'घास का घराना' तथा अन्य कविताओं'(1978) में संकलित है।

[चौतरफ गद के गलीचे है घास का घराना है
घास जिसे मवेशी खाते है
घास जो शर्म और शकाओ को ढतकी है
घास जिस के अन्यमनस्क कोने
जितनी खिन्नता से बुझते है उतनी ही तेजी और
तल्खी से आग को बाजुओ मे थाम लेते हैं]

घास का घराना

आखो क बरावर उठने लगती हैं दोगली दीवारें
घुटना से ऊपर सीढ़िया
जब मै आस-पास की अधजली इटो म
अपनी जुबान का धुआ
अपनी जीवनी की मुल सूजन
पहचानने की कोशिश करता हूँ
ऐन दुपहरी के वक्त रास्ता की गाठें
सख्त पड जाती है तब मौत के मुहरम से कालर
छुडाने के लिए क्या करे कोई
अलावा इसके कि पाँवो को
चुपके से मजमे मे छोड दे और मर्दुमशुमारी
के घेरे से बचकर
अकेला विलकुल अकेला किसी ऐसे दफ्तर म छुप जाय
जहा की सफेद कैंचियाँ
उसकी चमडी या चीवर न पकडती हो

लेकिन मेरे लिए यह सब इतना आसान नही होता

किसी जगह छुपन का मतलब है रोशनी के
शतनामे को पोछ देना
धधा ढूढ लेना उन तहखाना मे जो काने बाजार का
समूचा माल गाला म भर कर भी

भाषा के भाव को नहीं खोते
न नाक का नक्शा बिगाड़ते हैं

मैं मिणिया वल्द भूरजी रेत मे पैदा हुआ
रेत म बडा हुआ
कही भी रहूँ कुछ भी कहूँ धड तक हमेशा रेत म गड़ा हुआ
फिर ऊपर है एक बारूद का सिर
जो किसी तलघर म नहीं
तमचे म घुसना पसद करता है ताकि बाजीगरो की
बुनियाद को झकझोर सके

इनकार सिर्फ इनकार होता है और उसे जबरन किसी के
ओठो से अलग नही किया जा सकता

मुझे पेट म लेकर
जिस जगल के ओर छोर सूखे फल बटोरती
रही मेरी माई
वह नौ महीने बाद काट लिया गया
और अब वहा
इतने नगे ठूह है कि कोई उन्ह छू भर दे तो पहनने ओढने
का शऊर भूल जाये

चौतरफ गद के गलीचे हैं घास का घराना है
घास जिसे मवेशी खाते हैं
घास जो शम और शकाओ को ढकती है
घास जिसके अन्यमनस्क कोने
जितनी खिन्नता से बुझते हैं उतनी ही तेजी और
तल्खी से आग को बाजुओ मे थाम लेत है
जब जब मैं पानी की जगह थूक घूटते-घूटते थकने
और थकने लगता हूँ
उकता जाता हूँ उपायो से
अपन गुस्से को कमीज-पायजामे के साथ तहा कर
चद्दर मे लपेट कर
लौट पडता हूँ गुप्प घास के घराने

की पीली पगडडिया पर सशयहीन
वे मेरी हैं मुझे उन गलियो दरवाजा-दस्तूरा तक ले
जाती हैं बेबाक
अपने लोगा की पदचाप सुनने के लिए जो कुत्तो की
तरह कान उठाये रखते हैं

मेरी बगल म एक धारीदार थैला होता है या मोम की भाँति
गलता हुआ उष्ण मोह
कि झुकू नीचे चुकू बेआवाज
भूरी भभकती बालू को हथेलिया म उठा लू
सूध कर देखू उसकी बू
सन्नाटे जसी सनसनीखेज और सरासर सूफी

तभी नजर आती है रावगढी
समरू की चपटी खोपडी हुक्के की नाल
हर फूक के साथ उछलती है चिलम की लौ

अगारे की चौंध म थरथराता है उसका चेचक के दानो
से भरा डरा मुख
जैसे कोई मास-लोथडा
माची के झूले पर रख दिया गया हो

यह सच है कि समरू के पास
अपने जख्मो का कोई सिलसिलेवार ब्यौरा नही है
सिवा इसके कि सोटिया की मार से सूजी हुई कमर
कभी फोडे की भाति टीसने लगती है
कभी मवाद मे लिसफिस हो उठती है
उसे नही पता
कि उसका ससार
बुरा है या भला है क्योकि लू की लपटा और
'अदाता'
की रोस भरी चिनगारिया
म दिन रात रहने के बावजूद वह पूरी
तरह नही जला है

उसके टखनो पर कडी मशक्कत के खुरदुरे गट्टे हैं
मेहनत
हा हाड तोड मेहनत छुतही बीमारी है
यह जिसको लगती है
रोम रोम रौद कर ठगती है

रावले के रूखो की करखरी शाखाएँ
अभी भी इस तरह सनसनाती हैं हवा मे
माना ठाकर सा गोले गोलियो पर कोडे बरसा रहे हो

टीलो पर चमक रही है मुर्दा जानवरो की ठठरिया
और म
मिणिया वल्द भूरजी वासी छत्तर ढाणी
एक नुक्ते पर पहुँचकर भीत की तरह खामोश
खरगोश हो गया हूँ
मरी समझ मे नही आता कि इस द्वन्द्व इस
बियाबान
विलाप को किस ढग से कहा जाये
कैसे उधेडा जाए रेत म धँसी हुई जडो का जन्म-जाल
हालाकि मुझे उसका रेशा रेशा जबानी याद है
बोलना चाहता हूँ कि गले का टेंटुवा
बाहर निकल आता है फट् ऊँट के मीगने सा
जैसे चूल्हे मे चिटखते हैं लकडिया के ठठल
होठो से
किरच किरच लफ्ज फूटते हैं

रीढ मे दौड जाती है किटकिटी कँपकँपी आँधो म झाँट
उलझन लगती है गुच्चा गुच्छ

कितने ही दुख कितने ही कष्ट कितनी ही कुहनियाँ
कितने ही विक्लाग भुस दवे पडे हैं धूल म
कोढ के धब्बो से ढके हुए हाथ
दाद की धारियो से कटे हुए पुटठे
दमे से छलनी फेफडे

फीके आसमान में पंख तैराती हैं
अपसगुनी चीलें
उनकी गहरी छायाएँ

बालू की सलवटों पर मँडरा कर
पुलीसिया मकाम के ग्राम फाटक में लोप हो जाती हैं
सहसा —
सुनते हैं वहाँ एक भयावह 'अचरज' एक योग है
आधी रात को
जिसमें इकट्ठी होती हैं गाँव ढाणियों की जब्बर
चुड़लें और जिन्नों की गोद में बैठकर
चौपड़ खेलती हैं
यह एक अलग दुनियाँ है
यह एक अलग दुनियाँ है

यह भुरभुरी भड़ास भरी दुनियाँ यह रेगिस्तान की
खौलती हुई स्याही
डालो इस कड़ाही में पैर डालो
गहरे उतरो भाई
इतनी तेज इतनी गरमास वाली आँधियाँ
चलती हैं चौतरफ कि एक सच्ची साँस ले सकना
और पपोटे फैलाकर किसी रास रोगन को सही-सही
देख पाना मुश्किल है
लूओं में सीजती रहती है त्वचा
हड्डियों में सूराख हो जाते हैं
पुतलियों के बीच से गुजरता है छर्रेदार पीलिया
बारम्बार पहाड़ों का कद सम्हाल कर पृथ्वी को
पोसने वाले मिनख
पहाड़ों की तरह अंधे हो जाते हैं

वे अंधे और पंगु वाचाहीन जो जनतंत्र का
बोझ उठाने वाले
दमदार थम्बे हैं
कतई नहीं जानते कि वे क्या हैं और क्यों हैं

उन्हे अपनी हैसियत   अपनी ताकत की कोई
परवाह नही न ही यह मलाल कि
साला साल वे बेगारी मे इस्तेमाल किए जा रहे है

उनकी खाल खपरैल बन चुकी है और उन्ह किसी
मौसम की मार मखौल की फिक्र नही
ऐडिया तलुवा म फट चुकी है इस कदर
दरार बिवाइया कि खेता की मेड
से लगी हुइ खाइयो
पर हँसी आती है
जेठ-बैसाख के ताप म कोरी चाम पर उठते है फफोले
पानी के बुलबुलो की भाति फूट
जाते हैं   पसीन की धार कभी भाप बन कर उड जाती है

जाने कहा
कभी रोय रोये म खुश्क होकर खुजलाने लगती है

वे जुझारू जन
जिन्दा है पर उनके भीतर मौत पसरी हुई है
वे जीवन म जुताई म शामिल ह इसलिए मौत को
नही जानते

उन्ह किसी और ठौर म कतई दिलचस्पी नही है
इस तरह अलग अनसुन अनदेखे रहने के लिए वे
लाचार भी नही बल्कि अपन भिन्न तरीके से तयार है

यह तयारी नफरत के बगूला को
रोककर रखने
और अपनी असली नस्ल को ठोक-ठोक कर पहचान लेने की
आकठ तैयारी है

वे अटूट अविभाज्य हैं   किसी भारी भरकम हथौडे
की चोट से भी उन्ह नही तोडा जा सकता
किन्तु आदमखोर अदालत के क्रूर शिकजे

मे वे मुचते चले जाते है दिन-ब दिन
एक घडी ऐसी आती है कि गोठ के गोठ मिल कर
रुजगार की तलाश मे वे शहरा की तरफ
निकल पडते हैं व र-ब्रा-द
देह का फोलाद पियलकर बन जाता है पसीने का
नमक
गोदामा म कैद कर दस दिसावर के अलकृत नागरिको
निर्विराध निर्वाचित नाबदाना
को सौंप दिया जाता है
ताकि जश्ने-आज़ादी के मौके पर वह भाजन का
बेहतरीन बना सकें पुराने जायके को वाकायदा
बदल सकें

बरसा बाद ऽ ऽ ऽ ऽ द
बारिश के बादल देख कर
जब वे दो कौडी के मजूर
किसाना की तरह खाँच बजाते अपनी अधकचरी
अनाथ ढाणिया म लौटते हैं ता
उनकी औरतें
साहूकार- बनिया के री री बच्चे जनती हुई मिलती हैं

अलबत्ता

उन अघोरी औरता का सत्त कभी भग नही होता
वे जिस द्वार-द्वीप से पराया की गन्दगी अपने अन्दर
लेती है उसी से
सडाध की लाश बाहर फक कर चुस्त चगी हो जाती हैं

होता यह भी है कि धणिया की वापसी पर
वे उन गलीच री री बच्चो को
धतूरे के बीज या पिसा हुआ काँच खिलाकर
पल्ले झाड लेती हैं और फिर नए सिरे से
अगा का उजास समेट कर
अपने खून को अपन खून की औलाद

के हक में उबालना शुरू कर देती हैं
कोई ग्लानि नहीं
कोई हिचक नहीं न पछतावा न क्षमा याचना

हालत पर गहराई या कह ढिठाई
से सोचना खुद कटघरे के बीच खड़ा करना है

क्या डालें स्वयं को दया की दारुण देगची में
कि हर क्षण
किसी जुर्म का अहसास आता को कुतरे
किस लिए तरजीह दें उस बदशक्ल भावुकता को
कि वह आगे बढ़ कर जिरह करे

वे मेरे कबीले की कृपाण
और निष्पायता ज्ञिया है और उन्होंने
जिन्दगी के
जिस्मानी फरेब को अच्छी तरह समझ लिया है

कसी हुई तांत की भांति तना रही है
कमायच की धुन
उसके सहारे सहारे मैं अपने
उखड़े पुखड़े भूगोल
को खोज रहा हूँ खोद रहा हूँ खींच कर ला रहा हूँ
हिंदी हिंदुस्तान में

पेड़ पर पालथी मार कर बैठी है कानी कोचरी
परात में पत्ते बटोर कर
माई मसाला पीस रही है नथ की सींक धूप में
टिमकी सी लगती है

भवों की लकीरें आगे-पीछे खो जाती हैं
ज्यों ही थमती है सिलवटट की तुनकमिजाज तान
आंखें चेहरे से बड़ी हो जाती हैं

इतमीनान घनिष्ठ इतमीनान को मसूडो से चिपका कर
दात कुरेद रही है मँझली ठकुराणी
सोने की सलाई से फूटती हुई चिलक
तितली की तरह पाँखे पलकें झपराती है टटोलती
है नाभि की नष्ट नदीदी लहरा का

क्या शेप रह गया इस उचाट तन मे
हल्की लोबान हल्की दलदली दूब
की गध
जो बिस्तर की बासी शिकनो मे उलझ कर उतार
देती हैं अधीर अपनापा दनिक दाम्पत्य

ढहते हुए कोट-कगूरो के साथ यह सब ढह जाएगा
यह टोपीदार वक्ष यह टागा की टकार
यह देह का दबदबा

आक फूस की कोपडियाँ और पीप के किवाड

मैं कही कुदा बजा रहा हूँ कही उचक कर झाँकता हूँ
ऊदबिलाव

नाई का उस्तरा नाई की कनपटिया मे
कीरा लगा रहा है
बढई की आरी बढई के बेडौल ढाचे की काट छाट कर
तख्ते-ताऊस बना रही है
जुलाहे की जोरू
अपने रूखे बाला को रूखे नगे बदन पर ओढकर
सो गयी है
किसी की नजर म नही आता यह मसाला
कि 'पचात' भवन के
दिवालियाँ दालान मे झाडू देते देते
नूरेखाँ की नेक दुल्हन अब झाडू हो गयी है

'टाँके रमजू दरजी के नसीब मे है कुरते म नही'

एक ऊँघती उपेक्षा के साथ
वह इस साँच का स्वीकारता है और सख्ती
से सुई मे अगुश्ताना रोप देता है

सदियो के स्यापे को गाढा करता रहता है लम्बरदार
झट कलम उठाकर
टीप देता है ऐसा ब्रह्म बयान
कि काश्तकारी के हरूफ
पट्टेदारी की दवात म डूब जात हैं
फिर किसी की कुडकी किसी का चालान
किसी की जमानत—
खूराक और खलिहान पटवारी के पाताल मे गुम
हो जाते हैं

एक अनन्त रुचि और रुझान से
रजिस्टर के पन्ने
पलट रहा है गश्ती गिरदावर
किस बिल मे कौन सा साप है किस खाते म
कौन सा झूठ
फत्ते दीदे फाड फाड कर पालतू हो गया है

भूल गया है सचमुच वह भूल गया है कि हाकिम के
अगाडी और घोडे की पछाडी
खडा रहने वाला मार खाता है

लेकिन आदमी
अक्सर अपनी नामालूम हरकता के सामन
हार जाता है

नमाज पूरी कर मुस्करा रहे हैं
लगातार मुस्करा रह हैं रब्बे मियाँ और
झीर झीर आस्तीन
की अटरन म
बूद-बूद आँसू चिपका रहे हैं

उपलो और थेपड़ियो की
कोख मे
उगती है गोरी चिटठी माटी मिली नासपीटी छोरिया
हँसती-खेलती
दाखा भुवा की भाड झखाड लटा मे फँसकर
जूएँ चुगने लगती हैं
एक मुट्ठी दो मुट्ठी तीन मुटठी चार मुट्ठी

दसवी मुटठी के बाद
उनकी नन्ही निकासू छातियो म
चुनचुनी मचने लगती है बरौनिया म
झनझना उठत है विस्मय के वाद्य

मद मद सुर साधे छलकता है
ढोला मरवण' का वि छो ह
उसाँसें भरती हुई सूके सरोवर की पपडिया
तलफला कर
तिडक जाती हैं

किन्तु जब चौदहवी मुटठी
खुलती है
बन्द होती है
एक झाप झकार माँ-बाप की भुरिया म नख मारती
हुई
झपताल बजान लगती है

कच्ची कोपलो की कुनमुन से
सहम उठता है कुनबा
रेतीले रक्त राग रतौंधी का बहाना ढूढत है
लहसुन के छिलके उतारती हुई माई
अचानक
एक अपरिचित शोर सुनकर हडबडा उठती है
और उठकर होकर झाँकने लगती है
बाहर

लडाई खत्म कर लौट रहे हैं फौज के सिपाही होलदार
कतारो-कतार

वह डरकर बखारी म छुप जाती है
खाकी वर्दिया पुरजोर पेटियाँ सबको डराती हैं
वे कभी किसी फैसले पर
नही पहुचती
न दूसरो को पहुँचने देती है

लडाई आती है जिन रास्तो
से होकर
लडाई चली जाती है उन रास्तो को खोकर

लडाई हमेशा मदानो से
शुरू होती है पर मैदानो म खत्म नही होती

लडाई जिन सुर्खिया की सियासत मे
सुक्तिया गढती है
वे सुर्खिया काली पड जाती है
आखिरकार
कोई चिमना वल्द रिसालू या भादर वल्द गमीलाल
या चुन्नी खा वल्द सिराज
चौगान म उकडू या औधा गिरकर
चुपचाप
इन्तकाल के खाना को भरने लगता है,
काइया कलईदार कागजो पर लेकर सुन्न अगूठो
की छाप
रकम का हिसाब ठीक करता है
और निपट नयी बेवाओ को उनके हिस्से का इनाम
बाट देता है

फिर एक गहरी सास
फिर एक गहरी फास और यह कडवाहट
कि बचे हुए पसो की गाठ सरकारी खजाने म

न लौटा कर 'अम्मल' खरीद ली जाय
उसकी पीनक मे सो लिया जाए मचान पर
हफ्ता महीनो बिलकुल मुइदो की तरह

और क्या तरीका हो सकता है अपनी आत्मवचना म
उमडते हुए मातम से
मुक्त होने का
देखो प्रजापति ! एक पल इधर मुडकर देखो
तुम्हारी दिग्विजय और दिलासा
से दूर
'भारत दुरदसा' का यह सपाट सिफर अक
जिसम कही कथोपकथन तक नही

लेकिन तुम देखोगे कसे
तुम्हारे आँखें तो है ही नही
कोरे कान है और उन पर न जू रेंगती है न चू

मुसी हुई मधुमक्खियो
और रोगी रेलपेल के बीच
टाँग दी गई है एक इश्वरीय हाडी उसकी तली
से बदस्तूर टपाटप
टपक कर गिर रहा है शहद   जुमलो के जिहादी
अधकार मे

अधकार ही असलियत है अधकार ही अथशास्त्र
और उसे जैपुर से
दिल्ली तक के
मियादी मतबानो म
विशेषाधिकारो के साथ रख दिया गया है
ताकि बख्शीश और बकाया के फक को साबित
किया जा सके

एक ही सरबू   फुहारा की फुरहरी
को तरसते जोहते जिसे लकवा डँस गया है !

एक है नरसी जिसने छापी म
देखा लहराता हुआ समन्दर झागल निमल नीर
और पागल हो गया

—जहाँपनाह ! फिर भी तुमने उसे पनाह नहीं दी
घिसटता रहा बेचारा घालमेल म
चीखता रहा चारजामे से दवा-ढँका
उस सुग्गे की भाति
जो बाड के काटील पजो म उलच गया हो
बचन की उम्मीद गँवा बैठा हो—
एक है लँगडा
फौजी फकीरचन्द परेड म मार्च करते करते जो
मतिमूढ मेढक बनकर रह गया है
अकडकर अडियल हो चुका है ढाचा
सल्यूट ठोकते झाकते हाथ हारमोनियम बन गए है
दिल म अब धडकने नही
कदम ताल की कुटिल ध्वनियाँ हैं जो
अकबका कर
धँस जाती है श्वास की धौंकनी म
और राष्ट्रीय धुन में घनाटे पैदा करन लगती हैं !

एक है धापली जिसके मगज मे
है रीती बावडी की भाय भाय
इकतारे पर भैरुजी भगती
जिसने अडोस पडोस मे वेदाना खिचडी पका रखी है !

एक हैं धुकरसिंग जो 'घणी खम्मा क जमाने
म खाटी 'सिरदार थे अब चुनाव की चादमारी म
'परधान जी' साहेब
उसके नैण सदा नम रहते हैं नाराजगी म
होठ केसर-कस्तूरी से
इतन तर
कि निचोडकर पी जान की इच्छा होती है !

ा रस्सियो की तरह अपनी शिराओ
बँटते हुए
ता के गरुड पुराण को गले म
ा कर भटकते भागते हुए हताहत य लोग

म अटका कर एक कोना
ली बूनी
रही है गीली ओढनी
इस ओर कभी उस ओर नपाके देती है —

लगता है पृथ्वी उसकी पकड से परे-परे
रही है
बुदकियो से झर रह हैं झवाझव
सुड बिच्छू
सरकडो के पार
दारो के सकस मे सटटा खेल रहा है

सचित्र साँझ !

पाबूजी की पीतल मढी 'पड'
गुजन के पोर पोर पसरी हुई !

यही वक्त होता है अक्सर
फुकारता हुआ आता है वह अलादीन अजगर

पीछे पीछे
र ढट्टा बांधे कई और कई कई लुटेरे
दडबड हगामा मचाते हुए खूखार

ान म कुलबुलाते कीडे

ा की नोक पर उठा लेत है औरतों की
तफरी स्तनो की गेंदें
म जाके छोड देते हैं !

अगूठियो के लिए कतर देते हैं अगुलिया
हँसुलियो की खातिर गदनें

वे घूरे से होकर गुजरते हैं और हँगत हुए बच्चो
पर ठोकरें बरसाते है
फिर उनके नाक कान काट कर भर लेते है
जेबो मे

वे जगी डकरेल जब तक डाका डालते हैं
चबूतरे के नगाडे पर डका बजता रहता है
हाथा पाई करने
वालो को 'काठ' मे कस दिया जाता है
उनके हुक्म से बुढे बडेरे दाढी को
हिला डुला कर चौक का कचरा बुहारते हैं
खीसें निपोरते हैं हर दिन

लौटने मे पहले
वे हरामी आटे के पीपा पर खडे होकर
मूतते है
लडकियो के लँहगो मे उँडेल देत हैं अगीठिया
पुआलो और गटठरो और घास के खयालो म फैंक
जाते हैं
मुहफ्द मशालें
घू घू जलता है घास का घराना
ज्यू-ज्यू वापस मुडता है सगीनो का लश्कर

अनाज के कोठे खाली हो जाते हैं साँय साय

किन्तु धीरे धीरे उनम भर जाती हैं
रोने और रेंकने की मिलीजुली आवाजें तनहाइयाँ
घाऊ के जख्मो से रिसता हुआ लहू
एक ढर्रे मे गक हो जाता है उस समय भी जब
टिड्डा ने दम खेतो की आबरू चर जाते हैं
हताशा की हिनहिन खत्म नही हाती

फफकियाँ फाँकती हुई कराहती मूगी जाटणी
— जब तक जीना है यही 'इमरत' पीना है

मेरा अन्दरूनी उबाल उबकाइयो म
अनगल हो उठता है

कुछ नही अगल बगल कुच्छ नही
बस
बलि के बकरे की एक बुदबुदाहट भरी 'बस'
काई वसूली कोई कुरहाडी नही
जिसकी धार से चीर कर घटना की फफूद
अग्नि और आहुति
को अलहदा किया जा सके एक बार

सुगनी स्याणी टोकती है भूल जा मिणिया
यह अदावत यह अपमान भूल जा
याद रख, कुए की मिटटी कुए मे गिरती है
तबाही और तसल्ली
हमे कही न कही मजबूत करती है

आ मैं भूल नही पाता यह सब
रफ्त रफ्त ही सही मुझे इस बदसलूकी का
बदला लेना है
एतराज के उच्चारण म
एकाग्र होना है
याददाश्त मेरी कमजोरी है और अनगिनत
कमजोरियो
की गुजलक म ही मैंने अपने आपको सुरक्षित
महसूस किया है
सोग मेरे लोम लुमदो के लिबास म घिरे हुए

अगरसे के कसना को ओडकर
मौन तोडते हैं बाऊ—
जुगनुआ के ढेर से आच नही उपजती चाहे उन्ह

सिगडी मे डालकर रखो
या बाल्टी मे—

यह उस जर्जर बूढे
मुहताज 'मुखिया' का तजुरबा है जिसने तम्बाकू के
बहाने अगारो की धधक को पी पीकर
उगला है
बगावत से बलगम तक का कठिन सफर
समझौते और सलामी से दूर रहकर लाघा है
आज भी
तीन तीसी उम्र को अलग उतार कर जब वह जोर
से हाक लगाता है
तो उसकी आवाज सात कास से आगे
सुनायी देती है
जैसे तोपगोले के धमाके की गूज

या मै किसी गलतफहमी म नही हूँ मुझे मालूम है
कि बल का घाव कौवे को अच्छा लगता है
और सिरेपच
गादी पर उल्टा बैठे या सीधा
सिरेपच ही रहता है
उन सबकी पहचान भी मेरी बुगची मे है साफ-साफ
जो कुछ हदा म बँध कर
आज निरुत्तर और निश्चल और निहत्थे है
उन्ह लेकर मैं न परेशान हूँ न डावाडोल
क्योकि मुझे उनसे बेहद प्यार है और बमाप चिढ

वे ऐसे लोग हैं जिनके पास खोने के लिए कुछ नही है
अपनी विवशता और उदासी के सिवा

न उनके डील पर जिरहबख्तर की तामझाम
है न बर्छी भाले की

न वनटाप का वज़न है न अभिमान का

बुनियादी तौर पर वे सिर्फ मटियाली मूछों और
जिल्द की अनमनी फड़कनों में विश्वास रखते हैं

जब जब मैं उनके पैबन्द तार-तार धोतियों को
देखता हूँ
बेचैनी से भर उठता हूँ
फिर खींचतान कर सोचता हूँ कि वे उनके कपड़े
नहीं हैं औजार हैं
और औजारों को साथ रखना जरूरी है

सोचता हूँ यह भी मैं कई दफा
कि वे जब चाहेंगे इतिहास के पर्दे को छेद डालेंगे
नेतृत्व की नींद को खराब देंगे
अनुमान से ऊपर निकल जायेंगे

वे चरित पर देंगे चाशनी वालों को और भट्टियाँ
तोड़कर बिखर पड़ेंगे

मुझे उनके संयम और दुस्साहस पर भरोसा है

जिस दिन वे तय कर लेंगे कि 'अब और गलाजत नहीं'
बम्बू के धमाकों का
सारंगी में तब्दील करने के लिए निकल आयेंगे

अपनी वाकफियत के सहारे मैं इतना ही कह सकता हूँ
कि वे किसी चीज की व्याख्या
नहीं करेंगे
न दिलासा देंगे न तर्क
कवा की रागनी से उसी तरह निकल जायेंगे जैसे
कोई चाकू
मूठ से छूट जाता है

अभी वे केवल नासमझ नट हैं
पगडंडियों पर बांस गड़ा कर मोर-नाच नाच रहे हैं

अभी वे केवल मामूली भोपे और नाकुछ साजिन्दे हैं
लय की लपलपाती जीभ को
सडासी की गिरफ्त मे लेने से पहले
रावणहत्थे की
खुराट खूटियो को खोल रहे है

अभी वे बालू मे बिखरे हुए बीज हैं
उगेंगे तो एकजुट फसल के
सरफरोश पान फूलो की तरह उफनेंगे

अभी मुझे प्रतीक्षा है समर सोरठों की
नखो के नश्तर बनने की
और यह प्रतीक्षा एक निगरानी एक नाकाबन्दी
एक लम्बी कविता है
जिसे मैं कौम की कलफ लगी किस्तो मे लिखना
चाहता हूँ
बारहमासा की करारी कतरनो म बुनना
जैसे ऊन और आकाक्षा के अनन्य धागो से किसी
छापामार की जर्सी बुनी जाती है ।

बलदेव खटिक

लीलाधर जगूडी

जन्म सन् 1944, धंगण गांव (जिला टिहरी)।

कृतियां

शंखमुखी शिखरों पर (1964)
नाटक जारी है (1972), इस यात्रा में (1974)
रात अभी मौजूद है (1976) बची हुई पृथ्वी (1977)

सम्प्रति मुस्टिकसौड़ (उत्तरकाशी) में अध्यापन

पता जगूडी सदन जोशियाड़ा उत्तरकाशी (उ० प्र०)

प्रस्तुत कविता 'बलदेव खटिक' 'बची हुई पृथ्वी' में संकलित है।

[आप लोग अपनी परवाह करें
अपने बच्चो की जाच करवाये
यह केवल अफवाह नही
(बल्कि जिन्दा होने की नयी शर्त है)
कि देश मे कुछ लोग
पेट से ही पागल हो कर आ रहे हैं।

लेकिन वे जब फायर करेंगे
तो यह तय है कि
इस बार कौवे नहीं मरेंगे।]

बलदेव खटिक

रात, चिथड़ा खाती गाय के जबड़े में
धीरे धीरे गायब हो रही थी
यह उसका अंतिम छोर था
जिस पर एक बटन चमक रहा था

तभी हमारे गाँव के आकाश में
अचानक लोगों ने एक दरार देखी
सड़क से गाँव पर रोशनी फेंकती
यह पुलिस की गाड़ी थी

लेकिन यह इतना घना उजाला नहीं था
कि अंधेरे के भीतर दुबके अंधेरे में
कुछ आँखें, कुछ हाथ कुछ पाँव चमक उठें

वे भड़भड़ाकर उतरे
और रंगतू के घर की ओर दौड़े
उनकी दुरुस्त और निर्विघ्न दौड़ बताती थी
कि हमारे गाँव की चाल खराब हो गयी है
उनकी पदचाप
हमारे गाँव के कुत्तों तक के लिए
अपरिचित थी

जिसके चिथड़े न पहने हुए हों
हमारे गाँव के कुत्ते उसे फाड़ डालेंगे
व गाव की गरीब जनता के कुत्ते हैं
सभ्य और अजनबी पोशाकों के दुश्मन
लेकिन चार जोड़ी
पुलिस के बूटों में
उन्हें बैल के चमड़े की गंध नहीं आ रही थी
उनके पुलिस पर
एक लाइन में
जैसे जलओं उछल रहे थे

क्योंकि ऐसे मौके पर
जो जिसके पास है
उसका उपयोग जरूरी हो जाता है
इसलिए कुत्ते भौंक रहे थे

जो रगतू
कल राशन लूटने में शरीक था
उनके पास उसके नाम का वारण्ट
उसके परिवार ने रात भरपेट खाया है
भूख भर अन्न के नशे में
अपने देश का एक मामूली घर भी
आरामगाह बना हुआ है
(वैसे उस घर कहना भी
खामोखा जिन्हें घर कहते हैं
उनकी बढ़िया छतों पर घास उगा देना है)

गरीब करीब अपनी इच्छाओं की मुट्ठी खोलकर
इस समय तक वे सोये हुए हैं

अपनी लात में ताकत पैदा करके
उन्होंने उसे बूट से उठाया
और तुरन्त उसके हाथ बाँध दिये
(ये हाथ जो बड़ी-बड़ी इमारतों पर

पलस्तर की तरह चिपके हुए है)
फिर थाडा बचे हुए अनाज के साथ
उसे शहर ले गये
जहा आदमी के लिए
जेल और पोस्टमाटम की पूरी व्यवस्था है

पुलिसवाला पर आदमिया की आँख थी
इसलिए रँगतू की नगी औरत
बाहर नहीं आ सकी
लेकिन भीतर
बच्चे उसके शरीर से पहनावे की तरह चिपके हुए थे

यह सुबह थी
गाडी के इजन पर थरथराती हुई
अँधेरे के भीतर दुबके हुए अँधेरे म
बीवी बच्चा के लिए लडता हुआ रँगतू
पहली बार गाडी पर 'फ्री' चढ रहा था

यह एक ऐसा वक्त था
जब वनस्पति
केवल घी के डिब्बे का मतलब था
और कहीं भी कोई शब्द अपनी श्रीज म नही था

शब्द जो कि दाल और भात है
शब्द जो कि रोटी और साग हैं
नही-नही, शब्द इतनी बडी चीज नही हैं
शब्द केवल रोटी पर रखे हुए नमक के कण हैं
शब्द जो लार बनाते हैं
इस वक्त कहा से लाये जाये ऐसे शब्द
जो हलफनामा बन सके
जो तरफदारी कर सकें

पुलिस की गाडी म उसकी शब्दहीन आत्मा
एक नगे पेड की तरह है

जिस पर थाने पहुँचने से पहले
कई हजार घमौरियाँ फूट पड़ेंगी
कई हजार घमौरियों में कद पत्ते
निशान की तरह बाहर उभर आयेंगे
भाषा अचानक सारे शरीर में फल पड़ेगी
और कई हजार जीभों से बोलता हुआ
वह बरी हो जायेगा

अपनी जड़ों के सहारे
अपनी मिट्टी में उतरा हुआ रँगतू
न पेड़ है। न पत्ता है। न हवा है
अँधेरे के भीतर दुबका हुआ अँधेरे का कीड़ा भी नहीं
शब्द भी नहीं
रँगतू एक अकेले आदमी का दर्द है
और अकेला आदमी अपराधी होता है
सवालों के जत्थों से भरा हुआ अकेला आदमी
एक दुर्घटना होता है

थाने पहुँचते ही
गाड़ी से उतरते हुए रँगतू ने
थोड़ी देर के लिए खुद को बड़ा आदमी महसूस किया
ड्राइवर ने गाड़ी का डाला खोला
और वह सिपाहियों की ही तरह कूदता हुआ
जमीन पर खड़ा हो गया

तभी एक सिपाही को (जो रास्ते भर बीड़ी पीता रहा)
घर से आया हुआ तार दिया गया
तार पर उसकी माँ बीमार थी
लेकिन उसे शाम तक छुट्टी नहीं मिली

पक्का 'जेल आर्डर' बनवाने तक
वह रँगतू को, रस्सा पकड़े हुए
एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाता रहा
तीन गिलास चाय

और बावन पैसे की बीडी के घोरे पहुँचने के बाद
जिस समय झण्डा उतरने का गजर बज रहा था
उस समय रँगरूट को कम्बल, कोठरी और नम्बर मिल रहा था
(लेकिन सिपाही की मा
जेब मे मुडे हुए तार पर छटपटा रही थी)

जब तीसरे दिन छुट्टी पर
वह अपने गाव पहुँचा तो उसकी मा
सुई की नोक पर
अभी झड पडने वाली
पानी की बूद की तरह इन्तजार कर रही थी

वह भागा भागा जिला अस्पताल गया
एम्बुलैंस मागी
भाँग के पौधो के बीच जो खराब खडी थी
धतूरा जिसके इजन से बडा हो गया था

कई पुरानी लाशो को लाघते हुए
उसने चारो ओर अपना दिमाग दौडाया
और जब बडी मुश्किल से एक विचार
उसकी पकड म आया
तो वह लपककर पास ही थाने म गया

क्योकि आजकल केवल आदमी होना
न्यायसगत नही है
इसलिए उसने बताया कि मैं भी पुलिस विभाग का
आदमी हूँ
माँ को अस्पताल लाने के लिए
थोडा पुलिसगाडी दे दीजिए

उन्होंने कहा
पुलिस की गाडी अपराधियो को पकडने के लिए है
घर पर मरो या अस्पताल म मरो
सडक पर मरो या श्मशानघाट पर पहुँचकर मरो

मरना कहीं भी अपराध नहीं है
और फिर तुम्हारी माँ का
हमारे पास कोई वारंट नहीं जो हम गाड़ी भेज दें
आखिर मरने वाले को कौन पकड़ सकता है
अक्सर हमारे पकड़े हुए भी मर जाते हैं

जब शाम को एक दवा की शीशी और कुछ गोलियाँ लेकर
वह घर आया
तो उसने अपनी माँ को मरा हुआ पाया
संसार से यह फरारी किस अपराध से बचाती है ?

अभावों की इस आज़ाद कहानी में
क्या इसी तरह होती है मुक्ति ?

आखिर बढ़ाई हुई छुट्टियों में
जब उसने अपनी माँ को स्वर्ग पहुँचा दिया
तब वह फिर थाना बिजनौर में लौट आया

वह विरक्त होना चाहता था
लेकिन अपना भविष्य उसे
भीतर-ही भीतर ठग रहा था
कर्मकाण्ड की सारी कमज़ोरी को ढकता हुआ
उसका उस्तरा फिरा सिर
किसी फिल्मी गुण्डे का सिर लग रहा था

फिल्म वालों को जब गुण्डे और हत्यारे
दिखाने होते हैं
तो वे अभिनेता पर आम आदमी का मेकप कर देते हैं
बात दूसरी ओर चली जायेगी
क्योंकि इस बात को कान और ज़ुबान की तलाश है
इसलिए मैं आपको
फिर से थाना बिजनौर ले चलता हूँ
जहाँ अपना घुटा हुआ सिर लेकर
वह सिपाही इस समय संतरी ड्यूटी पर है

उसकी छाती पर गोलियों का पट्टा है
उसके हाथ मे एक बन्दूक है
उसे नहीं मालूम वह किसकी रक्षा कर रहा है
(मेरी समझ से वह केवल टहल रहा है)
क्या वह ससार की अपराध से रक्षा कर रहा है ?
क्या वह इस देश को बिगडने से बचा रहा है ?
भीतर एक कमरे म
अपने गन्दे लेकिन वरिष्ठ दाँतो को लेकर
दीवान बैठा है
रोजनामचे पर हाथ रखे हुए
जैसे वह शहर की पीठ हो

एक मार खाया हुआ आदमी चिचियाता है
मेरा बटुआ छिन गया
उसम मेरी लडकी का फोटो भी था
वे उससे बलात्कार करेंगे
वे उसे मार डालेंगे
देखिए, मुझे कितनी चोटें आयी हैं
मेरा दद—दज करो
इस मटीले कागज़ पर मेरा दद — दज करो
अपने होठो पर मुर्दा दिन को जिन्दा करते हुए
दीवान कहता है
किस कलम से करूँ ?
चाँदी की कलम से करूँ ? सोने की कलम से करूँ
कि लकडी की कलम से करूँ ?

मार खाया हुआ आदमी रिरियाता है
कि कानून की कलम से करो

कानून की कलम लकडी की होती है
दीवान कहता है—कल आना
मगर अपना गवाह भी साथ लाना
और किसी डाक्टर से यह भी लिखवा लाना
कि तुमने मार खायी-ही-खायी है

बाहर सन्तरी ड्यूटी पर खड़ा बलदेव खटिक
जिसका सिर मुंडा हुआ है
जिसकी माँ बिना दवाई के मर गयी थी
सब सुन रहा है
(थाने की बड़ी घड़ी सुधार कर
घड़ीसाज़ फाटक से बाहर जा रहा है)

अचानक सामने खड़े नीम के पेड़ पर
उतरते शाम के कौवों से बलदेव खटिक कहता है
— 'खत्म'
मगर वे नहीं रुकते
वह धड़ाधड़ फायर करता है
बन्दूक के बट को थाने की दीवार से मारकर
तोड़ देता है
और सीढ़ियाँ उतरकर
सड़क पर मरे हुए कौवों को लाँघकर
फरार हो जाता है

(थाने की बगल में उस समय सिनेमाघर के भीतर पर्दे पर एक
ऐक्टर प्यार कर रहा था)

अब तक वह सन्तरी था
अब वह बलदेव खटिक है
'माँ की चूत इस नौकरी की' कहकर वह
माँ, माँ माँ चिल्लाता हुआ
सीधा हमारे गाँव में घुस आया

उसके सिर पर टोपी नहीं है
कमीज़ हाफ़पैंट से बाहर आ गयी है
वह हरेक औरत से पूछता है तुमको क्या बीमारी है ?
अस्पताल तक पैदल चलो। गाड़ी खराब है

बच्चों से कहता है लाओ मेरी लकड़ी का कलम
मैं फैसला लिख दूं

किसी की बीमारी सुने बगर
किसी के पास एक क्षण रुके बगर
किसी को कोई फैसला दिये बगर
वह दौडता हुआ आया
और रँगतू की झोपडी मे
बेहोश होकर गिर पडा
(झोपडी का दरवाजा खुला हुआ था
रँगतू राशनवाले मामले मे जेल चला गया था
और उसकी औरत भी बच्चो समेत
वहा नही थी
मगर किसी ने भी उन्ह कही जाते नही देखा था
भीतर से नीद मे पूछ झुकाय हुए
एक कुत्ता निकला और अगली गली म मुड गया)

सुबह होने वाली है
लेकिन रात अब भी मौजूद है
रात उस वक्त भी मौजूद रहेगी
जब लोग दोपहर को ढलते हुए देख रहे हागे

हर घर को अपन दद मे लपेटती
दरवाजो की सधो को थोडा और चौडा करती हुई
रात ब्यानेवाली है
चिडिया और कौवा और कुत्ता के सामूहिक शोर म
पत्तियाँ थरथराने वाली है

तभी हमारे गाँव के आकाश मे
अचानक लोगों न एक दरार दखी
सडक से रोशनी फेंकती हुई
फिर यह पुलिस की गाडी थी

राख की तरह झरती सुबह म
चमकती हुई कुत्ता की भौक के बीच
बीडी पीते हुए वे उतरे
सम्बधो की वीरानगी म

उनके साधारण चेहरों पर
घरेलू थपेड़ों की गहरी शिनाख्त है
टट्टी फिरते हुए बच्चे हैं। फाड़े हैं
चूल्हे पर चढ़ा हुआ खदबदाता पानी है
भात के भपारे हैं

वे उतरे और रँगतू की झोपड़ी से
उस पागल सिपाही को बाँधकर ले गये
पहले उन्होंने उसके सरकारी कपड़े उतारे
क्योंकि सरकार पागल नहीं होती
सरकार अपराधी नहीं होती

यह अलग बात है कि हथकड़ी और सजा
इन दोनों में से
आम आदमी के लिए सरकार क्या होती है ?

उन्होंने भी उसे हथकड़ी पहना दी
और आम आदमी में तब्दील कर दिया

वह अपने ही गाल पर चाँटे मार रहा है
उसके पास न कोई सहमति है और न कोई इन्कार
धरती को पीटते हुए
वह अपने ही पर तोड़ रहा है

फिर भी उसके पागल सिर पर
बाल
आधा इंच बड़े हो गये हैं
उसके लम्बे नाखून संसार की धूल में
गन्दे हो रहे हैं
उसके हाथों में अब भी एक आदमी की ताकत
मौजूद है
लेकिन उसे अपने दुश्मन की सही पहचान नहीं है
और उसने गालियाँ सही जगह नहीं दागी हैं

अब वह एक कोठरी मे बन्द है
और उससे बयालीस नम्बर जूनियर
बाहर एक सन्तरी है
एक खम्भे से दूसरे तक टहलता हुआ
चेहरे से ज्यादा जिसके बूट म चमक है
अपनी मुस्तदी म
जिसका समूचा शरीर
अनुशासन की रग है

उसकी छाती पर भी
गोलिया का एक पटटा है
सिर पर टापी है और हाथ मे बन्दूक है
मगर यह पहले वाले सिपाही से कहा पर अलग है ?

यह भी अपने देश को
न कही पर पाता है
न कही पर खोता है
उससे कहा गया है कि हुक्म पर शक करो
विश्वास केवल दीवान का करो—दरोगा का करो
(उसका निजी कोई विश्वास नही)
अब देखना यह है कि
य कब पागल होता है !
एक अच्छा खासा
काम करता हुआ आदमी
पागल हो जाये
१९७४ की राजनीति म
इसके लिए कोई शब्द नही
मैं आपको यकीन दिलाता हूँ
बलदेव खटीक के खानदान म
कोई पागल नही था

आप लोग अपनी परवाह करे
अपने बच्चो की जाँच करवायें
यह केवल अफवाह नहीं

(बल्कि जिन्दा होने की नयी शर्त है)
कि देश मे कुछ लोग
पेट से ही पागल होकर आ रहे हैं

लेकिन वे जब फायर करेंगे
तो यह तय है कि
इस बार कौवे नही मरेंगे

□□